विश्व-कवि कालिदास

— एक अध्ययन —

लेखक—

सूर्यनारायण व्यास

प्रकाशक—

ज्ञान मण्डल प्रकाशन

ग्वालियर–इन्दौर

३ नवम्बर १९५७

मूल्य तीन रुपया
५० नये पैसे

प्राप्ति स्थान
ज्ञान मंदिर
पाटनकर बाजार, लश्कर
ग्वालियर (म. प्र.)

कालिदास जयन्ती, १९५७

मूल्य तीन रुपया ५० नये पैसे

मुद्रक
रमेश गुप्त
एम. ए. एलएल. बी.
मोती प्रिंटिंग प्रेस,
ग्वालियर

दो शब्द

'विश्व कवि कालिदास एक अध्ययन' नामक ग्रन्थ आप ३ नवम्बर को कालिदास दिवस पर प्रकाशित कर रहे हैं यह जानकर खुशी हुई, ग्रन्थ को मैंने पढ़ा है, कविकुल गुरु कालिदास न केवल भारत में, बल्कि समस्त-विश्व में कवि के नाते सुविख्यात हैं, और उनके काव्य का रस ग्रहण [illegible] के प्राय: सभी विद्वानों किया है।

महाकवि कालिदास के जन्मकाल और रचनाकाल के विषय में अनेक मतभेद हैं, आपने इन सब मतों का परामर्श कर जो अनुमान निकाला है, वह योग्य और तथ्य पूर्ण जान पड़ता है। इस सम्बन्ध में आपका अध्ययनपूर्ण विवेचन तथा विविधि-दृष्टिकोण से किये तथ्यान्वेषण का प्रयास विशेषरूप से उल्लेख-नीय है, महाकवि कालिदास का मेघदूत काव्य तो विश्व में असाधारण है, कालिदास के अन्य साहित्य का भी परिचय आपने इस ग्रन्थ में दिया है, जो अत्यन्त माननीय है, आपने यह ग्रन्थ लिखकर विश्व-कवि कालिदास के प्रति जो श्रद्धांजलि अर्पित की है वह अभिनन्दनीय है।

११-१०-५७
राजभवन
भोपाल

हरि विनायक पाटसकर
(महामान्य गवर्नर मध्यप्रदेश)

अपने विचार

कालिदास विश्व की श्रेष्ठतम-साहित्यिक-विभूति है । जग के समस्त मान्य मनीषियों ने उसकी अंतःकरण से अर्चना की है । और भारत का गौरव किया है। यह महाकवि कब हुआ, कहाँ हुआ, यह आज तक विद्वानों में विवाद का विषय बना हुआ है । अवश्य ही विक्रमादित्य के विषय में दीर्घकाल के विचार-विमर्श के पश्चात् अब केवल दो मत शेष हैं जिनमें प्रथम शताब्दि, और चतुर्थ शताब्दि । किंतु स्वतंत्र अध्ययन, और मौलिक चिन्तनशीलों में यह दृढ़ धारणा बन चुकी है कि विक्रम ई० स० की प्रथम शती के ५७ वर्ष पूर्व अवश्य था. इसी प्रकार महाकवि के विषय में भी अब दो मत ही प्रचलित रह गए हैं । एक प्रथम शति में और दूसरा द्वितीय चंद्रगुप्त विक्रम के काल में, इस विषय में प्रथम शति के पक्ष रखने वाले विद्वानों का बहुत बडा बहुमत है, और उनके तर्क भी इतने सबल है कि विवेचकों के भ्रांत विवेक को वे चुनौती देते हैं । प्रस्तुत पुस्तक में हमारा प्रयास भी प्रथम शति के समर्थन में है, इस विषय में महाकवि की रचनाओं के अंतः साक्ष्य से ही यह विश्वास दृढ़ होता जाता है कि कवि को गुप्त काल में ले जाना असंगत और मिथ, या कीथ जैसों की फैलाई हुई भ्रांत धारणाओं का अंधानुकरण है । परन्तु हमारी पर-प्रत्ययनेय मति के कारण, अपने स्वतंत्र अध्ययन को उन्हीं की उधारी पर न्योछावर किया जा रहा है । और भ्रांति की परम्परा को प्रचलित रखा जारहा है । समय-समय पर इन भ्रांतियों के निराकरण के लिए विविध दृष्टि से हमने जो लिखा है, उनमें से कुछ विचार संग्रहीत कर श्री मुन्नीलालजी मिश्र ने प्रस्तुत के रूप में पाठकों के समक्ष रखने का प्रयास किया है । अवश्य ही इनमें सूत्र-बद्धता लाने का अवसर सुलभ न हो सका और प्रूफ देखने का भी समय न मिल सका, इस कारण पुनरुक्ति, और त्रुटियों का रह जाना संभव होगया है । किंतु महाकवि के सम्बन्ध में जो भ्रांत धारणाएँ, अथवा कल्पनाएँ प्रचलित होरही हैं, उनके निराकरण में इस संक्षिप्त-संग्रह के द्वारा थोडा भी योग दान मिले, और स्वतंत्र विचारवृत्ति को प्रेरणा मिले तो इस लघु पुस्तिका के प्रकाशन का श्रम सार्थक हो जायगा विविध पहलू से हमने कवि के प्रथम शति के पूर्ववर्ति होने के सम्बन्ध में स्वतंत्र और मौलिक चिन्तन किए हैं, ये तर्क साधार हैं, और सहज उपेक्षणीय नहीं हैं।

हमारा विश्वास है कि महाकवि को गुप्तकाल में खींचकर लाने का प्रभाव केवल भ्रम परम्परा का प्रचार है। जिसे स्वाधीन-चिन्तन के इस युग में प्रोत्साहन नहीं मिलना चाहिए। द्वितीय चंद्रगुप्त विक्रमादित्य की राजधानी पाटलिपुत्र रही है। अवंती कभी भी नहीं रही, उस गुप्त क्षेत्र के साथ, अवंती के प्रति असीम-आकर्षण रखने वाले महाकवि का जुड़ाया जाना (जिसका पटना से कोई भी ममत्व नहीं) स्वयं उपहासास्पद है। हमें यह भी विश्वास है कि अब ऐसा समय शीघ्र ही आने वाला है जब हमारी विभूतियों के विषय में विदेशियों द्वारा फैलाई गई भ्रांतियां मौलिक-चिन्तन तथा स्वतन्त्र, और सत्य-समर्थन के समक्ष समाप्त होजायंगी। आज तक के समस्त संशोधनों और साधनों को सग्रहीतकर विवेकशील-विद्वानों का संशोधक-दल अन्तिम-एकमत निश्चित करने को बाध्य बन जाएगा, पता नहीं शासकों की आंखें इस दिशा में कब दूरदर्शिता से देखने को विवश बनेंगी। और अपनी राष्ट्र-विभूतियों की वंदना करने लगेंगी।

अंत में श्रीयुत सुशीलालजी मिश्र का मैं आभार मानता हूं जिन्होंने इस पुस्तक को सहज भाव से शीघ्र प्रकाशित करने का प्रयास किया। और भूमिका के विद्वान लेखक महोदय को किन शब्दों में धन्यवाद अर्पित करूं यह मैं समझ नहीं पारहा हूं। महाकवि के प्रति उनके असीम अनुराग के कारण ही उन्होंने यह श्रम स्वीकार कर हमें अनुगृहीत किया है।

पाठकों ने यदि पसंद किया तो द्वितीय-संस्करण में इन विचारों को सूत्रबद्ध-कर, परिष्कृत रूप में प्रस्तुत करने का विचार है।

२५-६-५७
भारती भवन
उज्जैन

सू. ना. व्यास

सूची

विश्ववन्द्य कवि कालिदास !

भारतीय प्रतिभा के ज्योतिर्मय नक्षत्र महाकवि कालीदास ने अपनी प्रज्वलित प्रज्ञा के प्रकाश द्वारा न केवल इस भूतल को किन्तु समस्त विश्व को आलोक पुलकाकुल बना दिया है। जगत् के समस्त सरस्वती-पुत्रों ने उसकी महत्ता के मान में अपना गौरवोन्नत मस्तक सादर नत कर दिया है।

कालिदास महाकवि थे। दुनिया के विभिन्न भागों में और भी अनेक महाकवि हुए हैं। व्यास और वाल्मीकि भी कवि रहे हैं, लाखों कविताएँ उन्होंने निर्मित की हैं। 'आदि-कवि' का सम्मान भी उनको अर्पित हुआ है। विदेशों की उर्वरा भूमि ने भी विश्व-विदित कवि-कोविदों को उत्पन्न किया है, किन्तु जो विश्व व्यापकता, विश्व-प्रियता और सार्वजनीन-सम्मान कालिदास ने प्राप्त किया है, वह सौभाग्य इस अवधि तक किसी ने प्राप्त नहीं किया। पर्वत और परमाणु में पदार्थ की एकता रहते हुए जो महदन्तर विद्यमान है, वही कालिदास में और इतर कवियों में है। कालिदास के एक 'मेघदूत' ने उसे जो स्थान दिया है, आज तक वह किसी सार्थवादी कवि के अनुसार—

'कनिष्ठिका सार्थवती बभूव' बना हुआ है।

कवि का 'मेघदूत' यदि केवल विरह-काव्य ही होता तो अनेक काव्य उसकी तुलना के लिये तत्पर बन जाते। किन्तु मेघदूत एक वैज्ञानिक सत्य सृष्टि है, मनोविज्ञान का प्रत्यक्ष उदाहरण है, भूगोल और इतिवृत्त, प्रकृति और मानव का प्रत्यक्ष और सत्य चित्र प्रस्तुत करनेवाला असाधारण काव्य है। यही कारण है कि उसके समकक्ष आज तक कोई काव्य नहीं ठहर सका। भगवद्गीता की तरह दुनिया की सभी भाषाओं में उसके अनुवाद और अनुकरण भी हुए, पर वह अपने स्थान पर यथापूर्व खड़ा है और महाकवि की अप्रतिम प्रज्ञा के समक्ष नत-शिरस्क बना देता है। इससे अधिक उसकी लोक–प्रियता का और अधिक क्या प्रमाण चाहिये ? रघुवंश और कुमारसंभव तो कवि-कीर्ति के कलश बने ही हुए हैं।

शाकुंतल का अमर कलाकार—

किन्तु शाकुन्तल का अमर कलाकार कालिदास केवल महाकवि ही नहीं, महान् नाटककार भी है, उनकी एकमात्र कमनीय कृति 'शाकुन्तल' ने उन्हें विश्व-विजेता बना

दिया है। शकुन्तला को पाकर जर्मन कवि गेटे जैसी पश्चिम की विभूति आनन्दोर्मिमाला में नर्तन कर उठी है। शकुन्तला ने पश्चिम प्रदेश में भारत के विषय में विस्तृत गहनतम अन्धःकार को चीरकर उज्वल आलोक प्रसारित कर दिया है। जिस समय दासत्व की शृंखला में आबद्ध भारतीयों की 'कीलित-जिह्वा' अपने अस्तित्व-मात्र के प्रदर्शन में भी बन्धनानुभव कर रही थी। उस कठिन काल में महाकवि की महामूल्यमयी कृति शकुन्तला ने एक पाश्चिमात्य न्यायाधीश के हृदय में अनुराग की अग्नि-शिखा प्रज्वलित की और उसकी लपटों ने अनन्त-आकाश तक उठकर वहाँ विस्तृत अज्ञानांधः पटल को प्रकाश से पाट दिया, और भारतीय प्रज्ञा के प्रति प्रणमित होने को प्रेरित किया। जो कार्य प्रचुर पूँजी और प्रचार परम्परा से भी कठिन होता वह एकमात्र नाटक शकुन्तला ने दूषित वातावरण में विद्युत् प्रकाश रेखा की तरह सहस्त्रों सद्भाव जागृत कर सम्पन्न कर दिया।

राष्ट्र का आराध्य—

महाकवि कालिदास सरस्वती का श्री शृंगार ही नहीं राष्ट्र का चेतना प्रेरक पुरुष भी है। विदलित देश का उद्धारक भी है। जीवित रहकर उसकी लेखनी ने जिस अमर-साहित्य की सृष्टि की है, उसके दिवंगत हो जाने पर भी उसकी अमर शब्द-सृष्टि ने हम समस्त भारतीयों का मस्तक गौरव से उन्नत किया है। आज हम महाकवि की पूँजी पर कुबेर का अक्षय भंडार लिए हुए हैं। किन्तु वह पूंजी भौतिक नहीं है, जिसका कोई व्यक्ति-नगर, देश या राष्ट्र ही उत्तराधिकारी बन सके। इस ज्ञान वैभव की यही विशेषता है कि सभी उसका निर्बाध उपयोग कर अपने को समृद्ध-सम्पन्न समझते हैं। यही कारण है कि कालिदास जितना हमारा है, उतना ही विश्व का है सभी उसकी साहित्य श्री से समृद्ध-समलंकृत हैं।

भारतीय ज्योतिर्मयज्ञान दीप—

किन्तु उसके जन्म देने का सौभाग्य इस महान् सांस्कृतिक देश को ही है। इसलिये हमारा गर्व करना स्वाभाविक है। मध्यभारत की वह अमर विभूति हैं। राष्ट्र की ज्ञान राशि का उन्नत नगाधिराज है। सरस्वती का सुन्दर शृंगार है। प्रतिभा की पावन प्रतिभा है। सर्वकालीन जीवित साहित्य की अक्षय निधि है। और वह अनंत-काल तक प्रदीप्त और ज्योतिर्मय बना रहनेवाला ज्ञान-दीप है, जिसका प्रकाश सदैव निर्मल आलोक प्रसार करता रहता है। आधुनिक युग के महाकवि श्री रवीन्द्र के शब्दों में—

"उत्सव के दिनों में मिट्टी की जो दीपमाला रची जाती है, उसे कोई दूसरे दिन के लिये नहीं उठा रखता। भारतवर्ष में उत्सव के दिनों में ऐसे ही अनेक मिट्टी के

प्रदीप क्षणिक साहित्य, रात्रि काल ही में अपने जीवन की शोभा दिखलाकर प्रातःकाल अनन्त विस्मृतिगर्भ में तिरोहित हो जाते हैं। किन्तु धातु का जो पहला प्रज्वलित दीप देखा गया वह महाकवि कालिदास का है। वह पैतृक-प्रदीप आज भी हमारे घरों में अपना प्रकाश फैला रहा है। पहिले वह हमारे उज्जयिनीवासी पितामह के प्रासाद-शिखरों पर प्रज्वलित हुआ था। वह आज भी ज्यों का त्यों है, उसमें कभी कोई कलंक-कालिमा नहीं लगती।"

विक्रम और कालिदास इतिहास की एक रहस्यमयी ग्रंथि—

यह विस्मय की बात है कि विश्व का आराध्य-कवि कालिदास अपने विषय में कोई स्पष्ट निर्देश नहीं करता। कवि-जन्म, जन्मस्थान और रचनाकाल के विषय में इतिहास और कालिदास-साहित्य के अनुशीलन कर्त्ताओं में बड़ा मतभेद बना हुआ है, विक्रम और कालिदास इतिहास की उलझी हुई पहेली ही बने हुए हैं, अब तक अनेक देशी-विदेशी विद्वानों ने अनेक प्रयत्न किये हैं, परन्तु किसी निश्चित मत पर नहीं पहुंचा जा सका है। कालिदास के काव्य और नाटकों के वाक्यों को लेकर अनुमानों के उत्तुंग शैल-शिखर पर आरोहण करने के प्रयास भी हुए हैं। पर वे केवल उपहासास्पद ही सिद्ध हुए हैं। कुछ विद्वानों ने कवि प्रयुक्त 'गुप्त' शब्द को लेकर चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त और कुमारगुप्त तक खींच लाने का आयास किया है। कुछ ने 'विक्रम' शब्द मात्र को सुलभ पाकर विक्रमोर्वशीय की संगति लगा प्रथम शती के पूर्वकालीन विक्रमादित्य से लेकर दशपुर के यशोधर्मन और हर्षवर्धन तक उसे जुड़ा दिया है। किन्तु किसी स्पष्ट तथ्यवादी कवि के काव्य से कुछ शब्दों को लेकर उन्हें 'श्लिष्ट' समझ, व्यक्ति या विशेषता बोधक कल्पित करना और उन पर से अनुमानों का आधार प्राप्त करना कहां तक उचित एवं युक्तियुक्त हो सकता है।

अनुमान-तरंग—

जिस कवि ने अपने वर्ण्य-विषय में देश-काल परिस्थिति, प्रकृति, भूगोल, ग्राम, नगर, नागरिक का यथातथ्य वर्णन करने में ख्याति अर्जित की है, और उनको कवि वर्णित रूप में अब तक भी यथावत् अनुभव किया जा सकता है, वह कवि क्यों श्लिष्ट-भाषा में किसी व्यक्ति या विषय का वर्णन करेगा? रघु की दिग्विजय से समुद्रगुप्त की विजय का आभास पाना, अथवा विक्रम से द्वितीय चन्द्रगुप्त की कल्पना लेना केवल कल्पना विलास के अतिरिक्त कुछ नहीं है। यदि कुछ शब्दों से ही कल्पित इतिहास की सृष्टि की जा सकती है तो आजके युगानुरूप शब्दों, विचारों और व्यक्तियों को रघुवंश कुमारसंभव से प्राप्त किया जा सकेगा। क्या 'मालविकाग्निमित्र' के लेखक को अन्य व्यक्ति चित्र अंकित

करने में कोई संकोच हो सकता था ? वह रघु के व्याज में समुद्रगुप्त या चन्द्रगुप्त क्यों रखता, पुष्यमित्र के अश्वमेध की तरह ही वह स्पष्ट उक्त अश्वमेध का भव्य वर्णन कर सकता था, जो लोग कुमारसंभव मे स्कन्दगुप्त को खोजना चाहते है, या कुमारगुप्त की कल्पना लड़ाने का यत्न करते है, वे भी अनुमान-लोक में संचार करते हैं ।

बंगाल की कल्पना—

हमारे बंगाली बन्धु 'ऋतु-संहार' के ऋतु वर्णन को लेकर बंग-प्रदेश की प्रकृति से साम्य सोचते है, किन्तु वे यह भूल जाते हैं कि बंगाल में केवल चार ऋतु ही होती है, जबकि 'ऋतु-संहार' षड्ऋतु का प्रत्यक्ष चित्र अंकित करनेवाला काव्य है, जो विशुद्ध मालव-प्रदेश का प्रतिनिधित्व करता है। इसी तरह मेघदूत के 'आषाढस्य प्रथम दिवसे' को उठा कर बंगालियों का आग्रह है कि बंगाल के संवत्सरारम्भ का ही वह वर्णन होता है । तब वे यह भूल जाते हैं कि कालिदास जैसा तथ्यवादी कवि मेघ से दौत्यकर्म करवाने जा रहा है, जो वर्षा के सिवा संभव नही । यदि वह बंगाल के वर्षारम्भ या प्रकृति से सम्बन्धित भावना को लेकर इस काव्य की रचना करता तो एक शब्द में भी वह बंगाल का (चाहे वह श्लेष में ही क्यों न हो) अपने काव्य में कहीं भी क्यों न उल्लेख करता ? फिर हमारे यहाँ ऋतुओ की गणना सदैव सौर मास से ही की जाती है । ऋतु-संहार इसका सबल प्रमाण है, यहाँ बंग-वर्षारम्भ की कैसी संगति बैठेगी ? आश्चर्य तो यह है कि वर्तमान बंगला वर्षारम्भ तो सम्राट् अकबर का चलाया हुआ है। अकबर संवत् १६१२ और हिजरी ९६३ में शासक बना था । यह हिजरी सन् चाँद्र मास पर अवलम्बित होता है । अकबर की विशेष आज्ञा से ही सौर गणना होने लगी थी । ऐसी अनेक भ्रांतियों ने कालिदास की कृति और काल के विषय में आशंकाएँ उत्पन्न करदी है । आज भी इन्हीं भ्रांतियों में कालिदास का 'आविर्भाव काल' उलझा हुआ है । विदेशों के विद्वानों की विचारसरणी ने हमें और भी दिग्भ्रान्त बनाया है । हम उन्हीं के लिखे अपने इतिहास की काली-कसौटी पर अपने कवि को भी कसकर परखना चाहते हैं। शिलालेख और सिक्कों की सीमा में आधुनिकता के आधार पर पुरातनता की परख करना चाहते हैं, जबकि जिस काल की ये रचनाएँ हैं, उनकी परीक्षा परिधि उन्हीं में समाविष्ट बनी हुई हैं ।

कवि के साहित्यानुशीलन की आवश्यकता—

कालिदास के साहित्य का निष्पक्ष बिना पूर्व ग्रह लिये सावधानी से अनुशीलन किया जाय तो कवि की आत्मा से साक्षात्कार किया जा सकता है । उसके निर्मित शब्द-शरीर के अन्तर में सूक्ष्मरूप में रहनेवाली आत्मा अपना परिचय देने के लिये

प्रस्तुत हो जाती है। कवि ने ऐसे अनेक प्रसंग प्रस्तुत किये हैं, जिनके द्वारा हम उसके आविर्भाव काल में अपने को पहुँचा सकते हैं। हमें इधर-उधर भटकने या भ्रांत होने की आवश्यकता नहीं है।

शुंगवंश और मालविकाग्निमित्र—

आरम्भ में हम मालविकाग्निमित्र को लेकर विदिशा के वैभव में विहार करें। शुंग शासन की प्रतिष्ठा, स्थिति और उसके वातावरण को समझने का सावधानी से यत्न करें तो हमें कालिदास को प्राप्त करने में भी कठिनाई नहीं होगी। 'सुत-मूल' या कुमार शब्दों को लेकर उनमें 'श्लेष' शोधन करने की आवश्यकता नहीं। किसी व्यक्ति शासन या किसी काल को लेकर कवि की कोई रचना है तो वह अकेला मालविकाग्निमित्र नाटक ही है। हम काव्यों में ऋतु-संहार को छोड़ कर नाटकों में मालविकाग्निमित्र को ही कवि की आद्य कृति और यौवन काल की कृति समझते हैं। इसी कृति के द्वारा कवि समाज के समक्ष आने का सफल प्रयास साध्य करता है। वह अपने पूर्ववर्ती भास-सौमिल्ल जैसे ख्याति प्राप्त कवि-नाटककार की प्रतिष्ठा से प्रभावित है, और उनके कीर्ति-क्षेत्र में प्रविष्ट होते हुए संकोच अनुभव करता है, किन्तु वह उक्त नाटक को लेकर शुंग शासन में प्रवेश करने का साहस करता है। सहसा उसकी वाणी से पुरानी रचनाओं के विषय में यह उक्ति निकल पड़ती है कि 'पुराण मित्येव न साधु सर्वम्'। वह भास की पुरातन-शैली की नाट्य-कृति के समक्ष, अपनी सामयिक घटना पर अवलम्बित शुंग शासन की स्थिति को प्रत्यक्ष प्रस्तुत करनेवाली नाट्य-कृति को समाज के सामने उपस्थित करता है। क्योंकि जनता और शासन के लिये वह सामयिक घटना को प्रत्यक्ष कर देता है। इसलिये भास की भाव भूमि को भूल कर जनता अपने 'काल' के वातावरण का प्रत्यक्ष चित्र देख कर प्रभावित हो जाती है। इस प्रकार कवि अपने पूर्ववर्तियों की कला पर—जनमानस पर अद्भुत प्रभाव डाल देता है। भास आदि के नाटकों पर नवीनता का प्रभाव नहीं पड़ा था। पौराणिक घटनाओं पर ही काव्य-नाट्यकला का कौशल प्रदर्शित होता था। कालिदास ही प्रथम व्यक्ति था जिसने एक ऐतिहासिक महत्व रखनेवाली अपने समक्ष घटित (या अपने से कुछ ही काल पूर्व की) घटना को अपनी कला का माध्यम बनाया था। कालिदास का पात्र अग्निमित्र यद्यपि एक साधारण कोटि का है, उसका शासन भी महत्व का उतना नहीं है। फिर भी कवि को प्रभावित होने के लिये यही पर्याप्त था कि वह एक ब्राह्मण सत्ता का आविर्भाव था, और बौद्धों के विरुद्ध धार्मिक-शासन की स्थापना थी, अश्वमेध का पुनराविर्भाव था। इसी प्रकार की भावना कवि की कला को उत्प्रेरक बना सकी, और जनता के आकर्षक का विषय बन सकी। शुंगवंश के प्रथम सम्राट् का जीवन काल ही उन्होंने अपने नाट्य का विषय बनाया, और इस प्रकार कवि अपनी प्रतिष्ठा और कीर्ति को प्राप्त कर भास, सौमिल्ल आदि की स्थापित प्रतिष्ठा का अधिकारी

हो गया। इसके पश्चात्-काल की किसी कृति में कवि ने किसी शासक या व्यक्ति को माध्यम बना कर कोई रचना नहीं की, केवल कला की आराधना ही की है। इससे स्पष्ट है कि वह शुंग काल का है।

शुंग कालीन मालव का मर्मज्ञ—

शुंग कालीन विदिशा और शेष मालवभूमि का वह जितना स्पृहणीय और प्रत्यक्ष वर्णन करता है उतना अन्य का नहीं। मेघदूत में भी वह इसी विदिशा-स्नेह से सिक्त होकर अपने मेघ को पहले विदिशा और वेत्रवती की चंचल लहरों से सिक्त समीर का स्पर्श करने के लिये प्रोत्साहित करता है, और उसी नगरी से वक्र-मार्ग होने पर अवन्ती को जाने के लिये प्रेरित करता है। अग्निमित्र के शासन की सूक्ष्म घटनाओं अन्तःपुर के भेद को भी वह जानता है। और जिस कौशल के साथ उसे वर्णित करता है वह बिना जाने देखे सम्भव नहीं। उस घटना का सिवा कवि के नाटक के अन्यत्र इतिहास में कहीं विशद वर्णन प्राप्त नहीं होता। यह प्रमाणित करता है कि कवि शुंग काल को निकट से जानता है, बौद्धों के लिये वह काल प्रतिकूल था। कवि ने बौद्धों के प्रति अपनी कहीं सहानुभूति बतलाई नहीं है। बल्कि दिङ्नाग (यदि वह शिलष्ट है) के लिये उपेक्षा का व्यवहार ही किया है। यदि अग्निमित्र के थोड़े ही समय के पश्चात्काल का मानले तो उसने भागभद्र के शासन में उध्वस्त शुंग-श्री को देखा है। जो लगभग ६० वर्ष के आसपास की स्थिति है। मेघदूत में विदिशा के विषय में—

'यः पण्यस्त्री रतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणाम् ।
उद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि ।।'

यह जो चित्र चित्रित किया है वह प्रकट करता है कि उसने देवभूति जैसे लम्पट शुंग शासक का रूप अंकित किया है। इसका प्रमाण 'कलियुग-वृत्तांत' में भी प्राप्त होता है—

'विहाय पाटलीपुत्रं विदिशायां सुखस्थितः ।
अन्यायेन पुरस्त्रीभिर्विहर्तुमुपचक्रमे ।।

अक्षैर्द्यूतैश्चकितवैर्वृतोनर्तकगायकैः ।
सुरामांसाशनो मत्तो वारस्त्री संगलालसः ।।'

इससे शुंगों के पतन की पराकाष्ठा का पता चलता है, और विदिशा की स्थिति का भी। जो कवि उसे निकट से नहीं जानता वह इतना स्पष्ट कैसे अंकित कर सकता है ? स्पष्ट ही मालविकाग्निमित्र की रचना इसी काल के सत्य स्वरूप प्रकट करने के

लिये हुई। और विदिशा के शुंग-गौरव गिर जाने पर कवि ने अवन्ती में निवास किया। यह काल डॉ० केदार के अनुसार ७२ बी. सी. का है।

कला का चरम विकास-काल—

रघुवंश शाकुन्तल इसके पश्चात्काल की रचना है। जबकि कवि की कला चरमोत्कर्ष प्राप्त कर चुकी थी, यह विक्रम काल है। और यहां कवि प्रौढावस्था में प्रवेश करता है, उसकी कला व्यक्ति और शासन के वर्णन से विरक्त बन अपनी प्रांजलता-प्रगल्भता को ही प्राप्त करती है। और विक्रम शासन उसे एक आदर भाजन मानकर सम्मान प्रदान करता है।

बौद्धों की उपेक्षा—

कवि की किसी रचना में बौद्ध संस्कृति के प्रति कोई इंगित नहीं है। उस पर वैदिक भावना की छाप ही दृष्टिगोचर होती है। जो कि शुंग और उसके परवर्ती शासन की विशेषता थी। जो कवि मालवे के सुन्दर-प्रमुख स्थानों, जलाशयों, प्राकृतिक-सौन्दर्य और सामाजिक विशेषताओं को वर्णित करता है, वह विदिशा के पास रहनेवाली उत्कृष्ट कलाकृति और पूर्ववर्ती सांची के स्तूप की सर्वथा उपेक्षा करता है और मालवे के अनेक भागों में अवस्थित स्तूपों चैत्यों-विहारों का कहीं नाममात्र भी नहीं लेता। वह अवश्य ही बौद्धों के प्रति सामयिक उपेक्षावृत्ति से प्रभावित होना चाहिये। वह अपने पूर्ववर्ती महान् अशोक का भी कहीं भूल कर उल्लेख नहीं करता है, जो विदिशा में विवाहित हुआ था, उज्जैन में शासक बना हुआ था, और मालवे के विभिन्न भागों के स्तूपों का निर्माता भी था। इस उपेक्षा का अवश्य रहस्य है। यही रहस्य कवि को द्वितीय चन्द्रगुप्त के काल में भी नहीं ले जा सकता क्योंकि वे बौद्धों का सन्मान करते थे। गुप्त सम्राटों के विषय में बौद्ध लेखकों को कोई शिकायत नहीं है। यदि कवि गुप्तकाल की उपज होता तो कदापि बुद्ध प्रशंसा से वंचित न रहता, किन्तु उस पर स्पष्ट छाप वैदिक धर्म, अश्वमेध आदि की है। इसी प्रकार शुंग के सम्राट पुष्यमित्र द्वारा बुद्धों पर किए गए अत्याचारों की भी लेशमात्र चर्चा नहीं की है। इसके विपरीत बौद्धभिक्षुणियों द्वारा राजकुमारियों की 'दूती' का कार्य करवाया गया है, इससे स्पष्ट है कि वह काल बुद्धानुयायी के पतन का था। अग्निमित्र के जीवन को इतनी निकट से जाननेवाला कवि यह न जानता हो संभव नहीं। किन्तु नवीन शासन, नवीन धर्म और ब्राह्मण-वंश का अभ्युदय एवं वैदिक शासन प्रतिष्ठा के प्रति उसकी अनुरक्ति ही जो कि स्वाभाविक है, उसे बौद्ध-अत्याचार- चित्रण से रोकती है। अतीत भारत के अश्वमेध आदि का आविर्भाव उसे प्रभावित किए हुए है, और यही कारण है कि साधारण श्रेणी के नायक अग्निमित्र को लेकर वह अपनी कला का प्रदर्शन करता है।

अश्वघोष—

कवि पर निकटवर्ती साहित्य परम्परा भी प्रभाव डालती है। भास की वासवदत्ता की तरह अग्निमित्र की मालविका उसकी कला का प्रतिपाद्य विषय बन जाती है, उसी प्रकार अश्वघोष का 'बुद्ध चरित' उसे रघुवंश और कुमारसंभव के लिए प्रेरित करते हैं। विद्वानों में थोड़ा यहाँ मतभेद है कि कालिदास पूर्ववर्ती हैं या अश्वघोष ? यह जो भी है पर एक दूसरे के काव्य पर प्रभाव स्पष्ट है, चाहे कालिदास प्रभावित हुआ हो या अश्वघोष। प्रथम-शती का उत्तरार्द्ध या द्वितीय शती का पूर्वार्द्ध ही यह समय हो सकता है। अश्वघोष भी ब्राह्मण है, बाद में बौद्ध-धर्म में दीक्षित हो जाता है, तथापि उस पर धर्म की अपेक्षा कवित्व का विशेष प्रभाव है, उसकी भाषा भी संस्कृत है। किन्तु कालिदास की भाषा, शैली और कहीं-कहीं वर्ण्य प्रकार में भी साम्य है। अवश्य ही उसकी रचना में शृंगार और शौर्य का अभाव है यह एक बौद्ध के लिए स्वाभाविक है। परन्तु कालिदास में सब रसों का सुन्दर समावेश है। शैली और भाषा के अनुशीलन से एक-दूसरे में अधिक अन्तर से नहीं विदित होता, इस प्रकार भी कवि प्रथम शती में ही ठहरता है।

अश्वघोष यदि प्रथम है तो कवि पर बुद्ध चरित का प्रभाव लक्षित नहीं होता। बौद्ध उपेक्षा ही रहती है और यदि पश्चात्-कालीन है तो यह विचारणीय हो जाता है कि उसके बाद भी बुद्ध चरित जैसी रचना हो और कालिदास अपनी किसी कृति में बुद्ध का स्पर्श भी न होने दे।

चन्द्रगुप्त से सम्बन्ध जोड़ने का निरर्थक प्रयास—

जो विद्वान चन्द्रगुप्त द्वितीय से कवि का नाता जुड़ाते हैं वे यह विचार करें कि द्वितीय चन्द्रगुप्त कभी उज्जैन का सम्राट् नहीं था। उसकी राजधानी पाटलीपुत्र ही थी। कवि ने पाटलीपुत्र में वह आकर्षण कहीं प्रकट नहीं किया जो उज्जैन मालव-प्रदेश के लिए किया है। वह कैसे राजकवि और राजमित्र या राजसभा का पण्डित रहा हो। एक और बात कि दशपुर का शिलालेख जिस कलापूर्ण सूर्य-मन्दिर के निर्माण की चर्चा करता है, वह चन्द्रगुप्त के पूर्व की घटना है। दशपुर के महत्व को वर्णन करते हुए कवि उस सौन्दर्यराशि मन्दिर को कैसे भुला देता ? इसके सिवा केवल 'विक्रम' शब्द से यह निष्कर्ष कैसे निकाला जा सकता है कि द्वितीय चन्द्रगुप्त से सम्बन्ध था। वह यदि हो भी सकता है तो प्रथम ई० स० पूर्व ५७ वाले विक्रम से ही हो सकता है। द्वितीय चन्द्रगुप्त या यशोधर्मन से तो परम्पराओं की भी सहज संगती न लगती। हाँ, शुंगवंश के अन्तिम काल का चित्र तो रघुवंश से प्राप्त किया जा सकता है। कालिदास ने अपने काव्यों में पाण्ड्यों का वर्णन विशेष-रूप

मे किया है, कही भी पल्लवों का नहीं और ये पाण्डय जब भारत में शासक थे, विस्तृत थे, वह काल ईसवी सन् की प्रथम शती ही थी, जो कवि का काल हो सकता है। चन्द्रगुप्त काल में कवि को खींचतान करने पर स्वय विधुशेखर भट्टाचार्य जैसे प्रामाणिक पण्डित मानते है कि महाकवि इतने असमर्थ नही थे कि उन्हे रघुवश में छुपे शब्दों में कहने की आवश्यकता पडती। कालिदास ने 'उदयन कथा कोविदग्राम वृद्धान्' मे उदयन और वासवदत्ता की प्रचलित कथा का उल्लेख कर अपने पूर्ववर्ती भास और उस घटना का ही निर्देश किया है जो उसके अविर्भाव के पूर्व घटित हुई थी। यदि चन्द्रगुप्त के काल में कवि का आविर्भाव होता तो इतनी पुरातनतम चर्चा को उज्जैन के ग्राम वृद्ध शायद ही स्मरण रख पाते और कवि को स्मृति दिलाने का कारण भी नही होता।

ध्रुवजी की सूझ—

गुजरात के स्व० विद्वान केशवभाई ध्रुव ने कवि के ग्रन्थों का सर्वथा नवीन दृष्टिकोण से विचार किया था। उन्होंने कविप्रयुक्त छन्द-परम्परा पर काल निर्णय करने का प्रयास किया और उनके ये तर्क भी कवि को संशुक्तिक प्रथम शती में सहज रख देते है, इनमें सूझ है और तर्क की मौलिकता है।

ध्रुव महोदय ने पहले भास, अश्वघोष, वसुबन्धु, पंतजलि, सुबन्धु, भारवि, माघ, विशाखदत्त, श्रीहर्ष, भवभूति, आदि में से कई एक पुराने कवियों का समय-निरूपण किया है। फिर प्रत्येक के ग्रन्थों में प्रयुक्त वृत्तों पर विचार किया है और यह दिखाया है कि बहुत प्राचीनकाल में कौन-कौन वृत्त अधिक प्रयुक्त होते थे और धीरे-धीरे परवर्त्ती कवियों के किन-किन नए छन्दों का प्रयोग आरम्भ किया था। प्रत्येक ग्रन्थों में प्रयुक्त अनुष्टुभ, गाथा, आर्य्या, आख्यानकी, उपजाति, वंशस्थ, वसन्ततिलका, मालिनी, प्रहर्षिणी, रथोद्धता, पुष्पिताग्रा, शार्दूलविक्रीडित और स्रग्धरा आदि छन्दों को गिन कर उनकी एक सूची उन्होंने प्रकाशित की है। यथा-स्थान यती का न होना और वर्ण-विशेष की शिथिलता पर भी आपने विचार किया है। ऐसे स्थलों की भी सूची आपने दे दी है। फिर इन्हीं बातों का विचार आपने कालिदास के काव्यों और नाटकों के सम्बन्ध में किया है। आपने दिखाया है कि सबसे पुराने काव्यो में अनुष्टुभ और आख्यानकी (उपजाती) की ही अधिकता है। कालिदास के रघुवंश में १६ सर्ग हैं। उसमें अनुष्टुभ, आख्यानकी, रथोद्धता, वंशस्थ, द्रुतविलम्बित और वियोगिनी छन्द व्यापक हैं। प्रहर्षिणी, वसन्ततिलका, हरिणी, मालिनी, आदि एक देशीय हैं। उन्नीस सर्गों में ६ सर्ग अनुष्टुभ में हैं और ८ आख्यानकी में हैं। इन दोनों कवियों ने केवल सम और अर्द्धसम वृत्त लिखे हैं। पर

उनके परवर्ती भारवि ने विषम और माघ ने जाति-श्रेणी के छन्दों का प्रयोग किया हैं। बहुत पुराने जमाने के कवियों के काव्यों में इन छन्दों का प्रयोग नहीं देखा जाता। पहले दोनों कवियों के काव्यों में १२ अक्षरों से अधिकवाले एक भी व्यापक, और १७–१८ अक्षरों से अधिकवाले एक भी एक-देशीय छन्द नहीं। पर परवर्ती भारवि माघ के काव्यों में यह अक्षर-संख्या क्रम से १३–१५ से लेकर १७–२१ तक पहुँच गई है। अतएव सिद्ध है कि कालिदास भारवि के समय के कवि नहीं, किन्तु अश्वघोष के समय के हैं। अनुष्टुभ आर्ष छन्द है, आख्यानकी उसके बाद का है। इन दोनों की अधिकता रघुवंश और बुद्ध चरित में है। रघुवंश में माल्यभारिणी नामक वृत्त एकदेशीय है। अर्थात् किसी पूरे सर्ग की रचना उसमें नहीं की गई। फुटकर तौर पर यह छन्द आया हैं। पर यही एकदेशीय छन्द बुद्ध चरित में व्यापक-भाव से वर्तमान है। इसके सिवा रुचिरा और शिखरणी भी बुद्ध चरित में व्यापक हैं। इससे साफ सूचित होता है कि बुद्ध चरित रघुवंश के बाद का है। बुद्ध चरित के प्रणेता अश्वघोष ईसवी सन् के पहले शतक में विद्यमान थे। यह बात ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध है। अतएव, इससे यह भी सिद्ध समझिये कि अश्वघोष से कम से कम सौ वर्ष पहले कालिदास हुए होंगे। निष्कर्ष यह निकला कि जिस विक्रम के नाम से अपना संवत् प्रचलित है उसी के समय में, अर्थात् ईसवी सन् से ५६ वर्ष पहले कालिदास का समय समझना चाहिए।

और विद्वान् भी—

ध्रुवजी का तर्क सर्वथा मौलिक-महत्व का है। और उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। विदेशी विद्वानों में भी जैसे सर विलियम जोन्स, डॉ० पीटर्सन आदि ने कालिदास को प्रथम शती के विक्रमकाल का स्वीकार किया है। इसी तरह डॉ० नन्दर्गीकर ने अपना पक्ष बहुत योग्यता और प्रमाणों के सबल आधार पर स्थिर किया है कि वह पहली शताब्दी में विद्यमान थे। उनका स्पष्ट अभिमत है कि कालिदास के काव्यों को देखकर ही अश्वघोष ने अपनी रचना की है। अश्वघोष ने कवि के पदमात्र ही नहीं, श्लोक चरणों तक का उपयोग कर लिया है। वे अश्वघोष को कवि का पश्चात्-वर्ती ही मानते हैं। इन सब तर्कों और विवेचनों से हम यही निष्कर्ष निकाल पाते हैं कि 'मालविकाग्निमित्र' के निर्माता कालिदास का काल शुंग वंश और विदिशा के वैभव का काल है। वे अग्निमित्र या उसके लगभग के काल में थे, जब लोगों को इस शासन के समय की सूक्ष्म से सूक्ष्म घटनाओं का पता था। अतएव कवि ई० स० पूर्व की प्रथम शती में विद्यमान थे, और वे मालवे में ही थे। शुंगकाल के पश्चात् ही विक्रमकाल का आरंभ होता है। इसलिये उनका अवंती और विक्रम से निकट सम्बन्ध हो जाता है।

स्व० डॉ० केदार का मत—

कालिदास के विषय में सी. पी. के स्व० डॉ० कदार ने बहुत अनुशीलन किया है, और वे भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे है। उनका अभिमत सार रूप में इस प्रकार है :—

(१) विदिशा द्वितीय शती बी. सी. और पांचवी शती ई. सन् के मध्य में शुंग वंश के समय में राजकीय नगर में था।

(२) अग्निमित्र शुंग वंश का प्रथम राजा था, और उसका राज्यकाल अल्प-कालीन होने के कारण, और उसके पिता पुष्पमित्र की मृत्यु के पश्चात् कुछ भी महत्वपूर्ण घटना न होने के कारण, विदिशा उसके समय में राजकीय नगर के गौरव को प्राप्त न कर सका।

(३) शुग वंश का एकमात्र सम्राट जिसका शासन दीर्घकाल था, और जिसके राज्य में वैदेशिक राजदूतवास के होने का ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध है, वह भागवत या भागभद्र था। ऐतिहासिक प्रमाण बतलाते हैं कि, शुंगों के राज्य के प्रति तीन या चार देशों ने अपनी राजभक्ति प्रदर्शित की थी।

(४) कालिदास उस समय फले फूले जब विदिशा एक राजकीय नगर था। इसलिए वह भागवत के शासनकाल के शेष भाग में अवश्य हुए थे।

(५) विदिशा और उज्जैन की तत्कालीन सामाजिक दशा का वर्णन घोर विलासी राजा देवहुती के शासनकाल से अक्षरशः मेल खाता है।

(६) कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' में अग्निमित्र के जीवन की जिन घटनाओं का चित्रण किया है, शुंग वंशीय राजाओं के आश्रित होने के प्रमाण हैं।

(७) अग्निवर्ण जो देवहुति के समान था, उस जीवन कथा का वर्णन कर एकाएक रघुवंश को समाप्त कर देना यह सिद्ध करता है कि, कालिदास शुंग वंशीय राजाओं के समकालीन थे।

(८) देवहुति की मृत्यु के पश्चात् विदिशा न राजधानी रह सका और न राज-कीय नगर ही। और गुप्त साम्राज्य के पतन के पूर्व यह पूर्व स्थिति प्राप्त न कर सका।

(९) अगर कालिदास गुप्तकाल में होते तो वे विदिशा को राजकीय नगर के नाम से वर्णन नहीं करते। कालिदास या किसी भी कवि से यह आशा करना एक-दम ही स्वाभाविक है कि अपनी कविता पुस्तक 'मेघदूत' में तत्कालीन घटना या भौगोलिक स्थिति, ऐतिहासिक या राजनीतिक दशा का वर्णन करें। यह निर्विवाद है कि विदिशा जैसा था वैसा वर्णन कालिदास ने किया।

(१०) कालिदास 'मेघदूत' में पूर्णिमांत मास का वर्णन न कर, अमांत मास का वर्णन करते हैं। अगर वे गुप्तकालीन राजाओं के समय होते तो उनके संवत् के अनुसार पूर्णिमांत मास की ही चर्चा करते। गुप्त सम्वत् उत्तरी भारत-प्रथा का अनुकरण करता है चूँकि यह गणना ५७ बी० सी० संवत् के समय से बे मेल नहीं हो सकती हैं, अतः ५७ बी० सी० के पूर्व अवश्यमेव हुए। मेघदूत की रचना भी ५७ बी० सी० के पूर्व ही हुई।

(११) परम्परागत कथाएँ कालिदास को उज्जैन के राजा विक्रमादित्य से सम्बन्धित बतलाती है। ५७ बी० सी० वाला संवत् विक्रमादित्य का ही स्थापित किया हुआ है। विश्वास किया जाता है, जो 'शकारि' भी कहलाता था। कोई भी गुप्त सम्राट् उज्जैन का राजा नहीं हुआ था। यद्यपि गुप्त वंशीय सम्राट् वहाँ के अधिकारी थे, परन्तु उज्जैन में स्थायी दरबार के सिद्धांत के साथ उनका राजा होना असंगत है। गुप्तकाल में पाटलीपुत्र राजकीय नगर था।

(१२) इस परम्परागत कथा को तब और बल प्राप्त होता है, जब नवीं शती ई० सन् से ५७ बी० सी० संवत् का नामकरण 'विक्रम संवत्' से हो जाता है। अगर नवीं शती ई० सन् में विक्रमादित्य को ऐतिहासिक तथ्य स्वीकार कर लिया गया, तो कोई कारण नहीं कि ग्यारहवीं शती बाद उसे स्वीकार करने में हम लोग असमंजस करें।

(१३) गुप्त सम्राटों के अतिरिक्त जिन्होंने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी, उज्जैन में एक दूसरा विक्रमादित्य हो गया है, जो 'हूणारि' के नाम से विख्यात है। लेकिन वह छठी शती ई० सन् में हुआ था। उसने ५२८ ई० सन् में मिहरगुल को पराजित किया था, और अगर कालिदास उनके समकालीन थे तो वह चन्द्रगुप्त द्वितीय के समकालीन नहीं हो सकते, जो सन् ५२८ ई० के ११३ वर्ष पूर्व मर चुका था।

(१४) कालिदास के किसी भी ग्रन्थ में गुप्त वंशीय राजाओं से कोई सम्बन्ध नहीं पाया गया है, बल्कि विदिशा और उज्जैन की दूषित प्रतीत सामाजिक दशा का वर्णन चन्द्रगुप्त द्वितीय या कुमारगुप्त प्रथम के गौरवपूर्ण शासन के साथ पूर्ण असंगत दीख पड़ता है।

(१५) कालिदास विक्रमादित्य 'हूणारि' का समकालीन नहीं हो सकता है, क्योंकि वह और वर्णनों के साथ दशपुर (मन्दसौर) के सूर्य मन्दिर की चर्चा कभी नहीं छोड़ता जो सन् ४३७-३८ ई० में पूर्ण हुआ था।

गणना-क्रम से भी—

कालिदास के समय के विषय में जितने गहरे अध्ययन की आवश्यकता है उससे ही तथ्यों की प्राप्ति सम्भव है, ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर जिस प्रकार प्रथम शती का प्रमाण सहज उपलब्ध हो सकता है, उसी प्रकार गणना-क्रम से भी काल स्थिति जानी जा सकती है। कालिदास ने अपने काव्यों में कई स्थलों पर ऐसे प्रयोग किये हैं, यथा 'प्रससादोदया,—'दम्भः', 'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे', 'प्रत्यासन्ने नभसि' और 'शापान्तो में भुजगशयनात्' आदि आषाढ़ मास, देवोत्थापन और नभो मास यह संगति सूर्य के पुष्य नक्षत्र के प्रथम चरण में जाने पर कर्क संक्रांति के समय में सम्भव होती थी, पर अब वह आर्द्रा के आरम्भ में होती है। यह नभो मास अब २८,३१ अंश हटकर होता है और इस स्थिति के आने के लिये गणना-क्रम से लगभग २००० वर्ष का समय चाहिये। यही बात प्रससादोदयादम्भः कुम्भयोनेर्महौजसः' के अगस्त्योदय की भी है, इसलिये भी कालिदास को २००० वर्ष से नीचे नहीं लाया जा सकता। श्री सी० वी० वैद्य और म० वि० परांजपेजी जैसे अनुशीलनकर्त्ता पण्डित कालिदास को प्रथम शती में ही स्थापित करते हैं, और सबल प्रमाण भी प्रस्तुत करते हैं।

शाकुंतल की एक घटना—

शाकुन्तल नाटक के षष्ठ अंक में एक घटना प्राप्त होती है, उससे यह ज्ञान होता है कि कवि के काल में विधवा को अपने मृत पति की सम्पत्ति की अधिकारिणी नहीं समझा जाता था। धर्म-ग्रन्थों में मनु आपस्तम्ब, बौधायन, वशिष्ठ आदि स्मृतिकार विधवा को मृत पति की उत्तराधिकारिणी नहीं मानते हैं, और नारद, कात्यायन आदि केवल भरण-पोषण की अधिकारिणी समझते हैं, गौतम एवं बृहस्पति विधवा को एक भाग की अधिकारिणी बतलाते हैं, तथा शंख, लिखित एवं याज्ञवल्क्य संपूर्ण स्वामित्व सूचित करते हैं। इस प्रकार जितना समय जाता गया अधिकार वृद्धि होती गई। इससे यह स्पष्ट होता है कि मनु-आपस्तम्ब, बौधायन, वशिष्ठ के पश्चात् तथा नारद, कात्यायन, गौतम आदि के पूर्व कालिदास का काल है। इतिहासज्ञ बृहस्पति काल को ईसा पूर्व मानते हैं, अतः कालिदास इससे भी पूर्ववर्ती होते हैं। इसी प्रकार हमारे स्नेही पं० गो० कृ० शास्त्री का मत है कि दुष्यन्त नाम से अंकित अंगूठी को धीवर के पास देखकर जब शासन के द्वारा उसे 'प्राण-दण्ड' देने की बात कही जाती है, वहाँ भी मनु आपस्तम्ब बौधायन आदि के मतानुसार 'रत्न-चोर' को प्राण-दण्ड देने की व्यवस्था थी, किन्तु बृहस्पति प्राण-दण्ड को कठोर मानते हैं। इसलिये स्पष्ट है कि यह व्यवस्था भी बृहस्पति के विधान से पूर्व ही की है। और कालिदास इस विधान से भी प्रथम शती के ही सिद्ध होते हैं।

भाषा-प्रयोग की दृष्टि से—

कालीदासीय नाटकों में जिस प्राकृत भाषा का प्रयोग किया गया है, वह मागधी प्रचुर भाषा है। यह ई० सन् के पूर्व प्रथम शती की शैली है। उसके पश्चात् के प्राकृत मागधी प्रचुर नहीं रही है।

विचार और शैली में साम्य—

भास और कालिदास की नाटकीय विशेषता को भी तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो एक विशेष समता अद्भुत रूप से प्राप्त होती है। जो भास से स्पष्ट प्रभावित प्रतीत होती है, यथा यौगंधरायण वासवदत्ता को पद्मावती के सुपुर्द करता है और बाद में पद्मावती का राजा के साथ विवाह हो जाता है। राजा वासवदत्ता के विवाह का चित्रोल्लेख देखता है। महारानी पद्मावती राजा को तब कहती है वासवदत्ता की तरह ही कोई ब्राह्मण कुमारी हमारे अंतःपुर में भी है। इस प्रकार वासवदत्ता प्रकट होती है। राजा के साथ उसका मिलन होता है। यही प्रसंग थोड़े भिन्न प्रकार से और अधिक सुन्दरता से कालिदास ने अपनी प्रथम कृति मालविकाग्निमित्र में उतार लिया है। वहा मालविका को पटरानी के सुपुर्द किया जाता है मालविका संगीत सीखती है, वासवदत्ता वीणा सीखती है। मालविका को चित्र से अंकित देखकर तथा नृत्य मुद्रा में देखकर राजा अनुरक्त बन जाता है। जिस तरह वासवदत्ता को चित्र में देखकर राजा मुग्ध बन जाता है। मालविका और वासवदत्ता दोनों ही अन्तःपुर में रहती हैं। इसी प्रकार शकुंतला और वासवदत्ता में भी अनेक प्रकार साम्य प्रकट होता है। पद्मावती की शिरो वेदना, शकुंतला की काम वेदना, पल्लव-शयन, पुष्प-शयन दोनों के मिलने का वर्णन वासवदत्ता का तपोवन वर्णन, और शकुंतला का आश्रम वर्णन वियोग में उदयन की स्थिति और दुश्यन्त की स्थिति वासवदत्ता के चतुर्थ अंक के प्रमद वन और विक्रमोर्वशीय एवं मालविकाग्निमित्र के प्रमद वन तथा दोनों वनों में दासी का विदूषक को खोजते आना, दोनों में वसंतक पात्र की समानता वासवदत्ता में भंवरा विदूषक को तंग करता है और यहां स्वयं शकुंतला को। इस तरह भास और कालिदास के नाटकों में अद्भुत साम्य है। न केवल पात्रों की किन्तु भाषा, शैली, विचार और प्रसंगों में भी विचित्र समानता है।

यह समानता कालिदास को भास से प्रभावित प्रकट करती है। और उनके काल को बहुत निकट ला देनेवाली है। यह सिद्ध करती है कि कालिदास प्रथम शताब्दी के पूर्व काल में थे। जो लोग विदेशी विद्वानों के आधार पर अपने विचारो को भ्रांत बनाते हैं, और शब्दों के साथ व्यायाम कर मनमाना मोड़ देते हैं, वे यदि कवि के ग्रन्थों को ही सावधानी से तुलनात्मक और तर्क दृष्टि से परिशीलन करने का

सतत परिश्रम करे तो वे महाकवि के काल स्थल परिस्थिति का स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष दर्शन कर सकेंगे। कालिदास के काल निर्णय के विषय में बहुत कहा जा सकता है, और सप्रमाण भी।

कालिदास का स्थल-निर्णय—

कालिदास के काल-निर्णय की तरह ही स्थल-निर्णय का विषय भी विवादास्पद बना हुआ है। कुछ विद्वानों की सम्मति में कालिदास काश्मीरी थे, कुछ बिहारी, कुछ बंगाली और कुछ हिमालय निवासी एवं विदर्भवासी भी बतलाते हैं। बंगाली बंधुओं ने एक नरमुण्ड भी प्राप्त कर लिया है, जिसे वे महाकवि की मूर्ति मानते हैं। हमने समय-समय पर इस सम्बन्ध में विक्रम तथा अन्य पत्रों में पर्याप्त लिखा है। और ऐसे कुतर्कों या काव्य-विनोदों की चर्चा का सतर्क उत्तर भी दिया है। बंगाल की मेघदूत समिति ने जो भ्रांति विस्तारित की थी, उसका सविस्तर, सप्रमाण उत्तर प्रस्तंगत 'माधुरी' में हमने बहुत समय पूर्व ही दिया है। बंगालियों की कृपा से मेघदूत का 'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे' बंगाली वर्षारम्भ भावना से प्रेरित बन कालिदास स्मरण दिन भी कुछ समय बना, किन्तु महामहोपाध्याय मिराशीजी जैसे कालिदास के अध्ययनशील विद्वान और महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री (सी० आई० ई०) जैसों ने कवि की बंगीयता और आषाढ़ के महत्व को स्वीकार नहीं किया। स्वयं बंगाली होते हुए भी महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री और म. म. विधुशेखर भट्टाचार्य जैसे प्रौढ़ पुरातत्वज्ञों ने कवि का स्थल मालव-भूमि ही माना है, हरप्रसादजी शास्त्री तो कालिदास को अनेक प्रमाणों से मंदसौर (दशपुर) का ही मानते है। स्वयं विश्व-कवि रवीन्द्र और योगी अरविंद कालिदास को अवन्ती का स्वीकार करते हैं। कविवर रवीन्द्र ने अपनी एक सुन्दर भावपूर्ण कविता में यह व्यक्त भी किया है कि—यदि मैं कालिदास के काल में अवन्ती में उत्पन्न हुआ होता तो नवरत्नों की मालिका में मेरा भी कहीं स्थान होता। कालिदास के काव्य और नाटकों में मालव भूमि के प्रति जो पक्षपात प्रदर्शित होता है। जिस तरह यहां की छोटी से छोटी नदियों, टीलों, नगर-ग्रामों, प्रकृति पुंजों का वर्णन है, वह स्पष्ट कवि के आत्मीय भाव को प्रकट करता है। उज्जयिनी महाकाल और गन्धवती जैसे एक छोटे से जलाशय की भी वह वर्णित करता है। जब कि रघुवंशकर्त्ता कालिदास मेघ को अयोध्या नहीं भेजता। यदि वह द्वितीय चन्द्रगुप्त काल का होता तो वह अपने काव्य या नाटक के किसी पात्र को पाटलीपुत्र ही भेजता, वह विदिशा से अवन्ती तक मार्ग में पड़नेवाली वेत्रवती, सिंधु, निर्विन्ध्या, गम्भीर जैसी कृशकलेवरा नदियों को अवश्य स्मरण करता है। पूर्व मेघ

का बहुत भाग तो वह विदिशा, दशार्ण, अवन्ती और विशेषतः उज्जैन पर ही निर्भर कर देता है। स्व० म. म. हरप्रसाद शास्त्री तो ऐसे ही उल्लेखों से प्रेरित हो कवि को मन्दसौर दशपुर का सिद्ध करते हैं।

परन्तु स्व० डॉ० केदार इनसे भी आगे बढ़ गए हैं। उनका मत है कि कालिदास मालव के देवगिरी (देवडूंगरी) का निवासी था, क्योंकि उस एकांत-ग्राम पर स्थित 'स्कन्द' (कार्तिकेय) मन्दिर को वह विशेष रूप से प्रकाश में लाता है। यह उसका जन्मभूमि प्रेम ही है। डॉ० परांजपे और इतिहासाचार्य सी० व्ही० वैद्य ने भी कवि की जन्मभूमि उज्जैन होना स्वीकार किया है। सर विलियम जोन्स जिसने शाकुन्तल का अनुवाद किया है, उनकी सम्मति में भी कालिदास का स्थान मालव ही रहता है। ये सब परम्परा और जन-श्रुतियों के भी अनुकूल है, जो विक्रम-कालिदास और अवन्ती को लेकर अनेक रूप में जन-जीवन में न जाने कब से प्रतिष्ठित हैं। कुछ विद्वानों ने अपने अनुकूल प्रकृति चित्रण प्राप्त कर कालिदास को काश्मीरी या हिमालयीन बनाने का यत्न किया है, किन्तु कालिदास ने जिन ऋतुओं का वर्णन किया, वे यथार्थ रूप में मालव प्रकृति में ही सार्थक होती है। ऋतुसंहार की षड्ऋतुओं का रूप न तो बंगाल में ही रहता है न हिमालय में ही। बंगाल में केवल ४ ऋतु ही होती है, हिमालय में केवल २ ही रहती हैं। कहीं-कहीं ३ भी। फिर शेष ऋतुओं की संगति कैसे जुड़ाई जा सकती है ? यदि कवि बंगाली होता तो वह अपनी सर्वप्रथम कृति कही जानेवाली रचना ऋतुसंहार में क्यों नहीं वर्षारम्भ से संवत्सर प्रवृत्ति का संकेत करता है। मेघदूत का आषाढ़ मास तो शुद्ध 'मानसून' (वर्षागम) का सूचक है, जो उसका संदेशवाहक का काव्य माध्यम है। बंगाल में यदि ग्रीष्म समशीतो रहती है तो ऋतुसंहार के 'प्रचण्ड सूर्यः स्पृहणीयचन्द्रमा' से उसकी कैसे संगति जुड़ाई जा सकेगी ? यही आपत्ति हिमालय और विदर्भ को रहेगी। किंतु कालिदास की कृति ही शब्दों में मालव-मोह लिए हुए हैं, जो अपनी जन्मभूमि के अनुराग की साक्षी है। इसके सिवा विदिशा के अग्निमित्र की राज-सभा में प्रवेश, शाकुंतल का अभिनय अवन्ती में किया जाना, ये ऐसी बातें हैं जो उसे अवन्ती में ही मुग्ध रखते हैं। सभी विद्वानों को यह तो मान्य है कि कवि का कार्य-क्षेत्र अवन्ती और मालव-भूमि रहा है। यही कारण है कि यहां के जल-स्थल नगर-समाज और प्रकृति एवं वातावरण से वह पूर्ण परिचित एवं समरस है, किन्तु कवि को वे कहीं बाहर से मालवा या अवन्ती में आने का आग्रह सेवित करते हैं। जब हम मालविकाग्निमित्र के युवक नाटककर्त्ता को विदिशा में कीर्ति प्राप्त करते देखते हैं और प्रौढावस्था में प्रथम विक्रम के शासन में सभादृत होते अनुभव करते हैं, तथा उसकी प्रतिभा के वैभव को मालव-मही में ही विस्तारित विकसित देखते हैं तो किस काल में वह कहीं से आकर इस प्रदेश में कैसे आश्रय प्राप्त करता है ?

कालिदास की परीक्षा—

आज से ११ वीं शताब्दी में होनेवाला महाकवि राजशेखर हमें यह बतलाता है कि—

> "श्रूयते चोज्जयिन्यां काव्यकार: परीक्षा
> इह कालिदासे मेण्ठावत्रामररूप भारवय:।
> हरिश्चन्द्र चन्द्रगुप्तौ परीक्षिताविह विशालायाम।"

उज्जैन में कालिदास, मेण्ठ, अमर, रूप, भारवि, हरिश्चन्द्र, चन्द्रगुप्त आदि ने काव्यकार परीक्षा दी थी। इससे यह प्रतीत होता है कि कवि का अध्ययन उज्जैन में हुआ था, और उसने यहीं परीक्षा भी दी थी। इस उल्लेख की केवल अनुमानों और शब्दों की खींचतान से उपेक्षा नहीं की जा सकती। कवि के वर्ण्य विषय की यथार्थता और प्रकृति-चित्रण की प्रवीणता से उसे किसी प्रदेश में उत्पन्न करवाने की कल्पना नहीं करना चाहिये, वह उसके यथार्थ वर्णन का कौशल ही है। वस्तुत: कवि का मालव-भूमि के प्रति अनुराग, उसका मार्मिक ज्ञान और पक्षपात पद-पद पर प्रतीत हो रहा है जो उसकी आत्मीयता और उत्पत्तिभूमि के प्रति मोह का ही प्रत्यक्ष प्रतीक है। अन्यथा उसे 'क्षिप्रावात' की अपेक्षा हिमशृंग या बंग-सागर पर ही कोई स्वतन्त्र रचना करने की प्रेरणा होती। वह मालविकाग्निमित्र और विदिशा में मुग्ध न बनता। सम्भव है 'तत्रस्कन्द' को 'देवगिरि' ने ही 'कुमारसम्भव' निर्माण की कवि को प्रेरणा दी होगी, जैसा कि डॉ० केदार के अनुमानानुरूप उनकी जन्मभूमि होने का स्थान हो सकती है। यह तो भी हो, मेघदूत, मालविकाग्निमित्र का लेखक कालिदास उज्जयिनी और मालव-भूमि के अनुराग में जितना तन्मय बना हुआ है, और जिसकी परीक्षा भी इसी भूमि पर होती है, वह कहीं बाहर से आकर नहीं बसता है। उसने अपनी भूमि और नगर को काव्य की मनोहर सृष्टि में स्थान देकर अमर बना दिया है। यह सिवा जन्मभूमि के मोह के और कुछ नहीं है। अन्य दिग्विजय वर्णनों और प्रवास प्राप्त भौगोलिक एवं प्राकृतिक वर्णनों की तरह मेघदूत का मालव-अवन्ती वर्णन नहीं है, उसकी अपनी स्वतन्त्र विशेषता है। १५५ श्लोकों के लघु काव्य में ७ श्लोकों के द्वारा इस अवन्ती और अवन्तीमण्डल की महिमा उसके अन्तर में रहनेवाली आत्मीयता की प्रतीक है, इसलिए सन्देह का कारण नहीं कि वह अवन्ती का अधिवासी नहीं था, यहीं क्षिप्रा के पावन पुलिन पर उसकी प्रतिभा का विकास हुआ है। इसी भूमि को उसने अपनी अमर कृतियों से धन्य और चिरंजीव बनाया है। मालव भूमि का यह महान् सरस्वती सुपुत्र मालवीय के रूप में ही विश्व में विख्यात है। कालिदास, विक्रम और अवन्ती इन तीनों की त्रिवेणी अभिन्नता लिये हुए हैं। मतभेदों के रहते हुए भी जागृतिक विद्वानों में अवन्ती कालिदास की

भूमि के रूप में ही सम्मान प्राप्त किए हुए हैं, जिसे परम्परा भी समर्थन करती जा रही है। कालिदास, विक्रम और अवन्ती से सम्बन्धित विशाल जैन पुरातन साहित्य उसी अभिन्नता और एकता का समर्थन करता है जिसको जन-मन वाणी ने शतियों से सहज स्वीकार कर रखा है। विक्रम, अवन्ती और कालिदास की अभिन्नता अनेक मतभेदों-विवादों की परम्पराओं से टकराती हुई भी उसी रूप में अचल बनी हुई चली आ रही है, मानो उसके उज्ज्वल अतीत ने सत्य का साक्षात्कार कर रखा है जिससे आज का युग अनजाने ही भ्रांत भटक रहा है। वैसे तो 'इलियड' के प्रणेता 'होमर' कवि के लिए भी सात-सात देशों ने उसके अपनाने का दावा किया है। यदि कालिदास के लिए भी हमारे महान् प्रदेश के कुछ भाग यह भावना रखें तो इसमें विस्मय का कारण नहीं, यह उसकी महानता और सर्वप्रियता का ही प्रमाण है। यह विवाद भी स्पृहणीय है। किन्तु कवि के मालव-अवन्ती प्रेम से कैसे किसी को पराङ्मुख किया जा सकता है? यही उसको विवादों से ऊपर उठाए हुए हैं. और अवन्ती के अस्तित्व को मानने के लिए विद्वानों को विवश बनाए हुए हैं। वैसे वह सर्व-प्रथम भारतीय है, हमारे महान् सांस्कृतिक राष्ट्र की अमूल्य निधि है, और वह अपने महान् साहित्य की देन के कारण समस्त विश्व का है। सभी को उसपर समान अधिकार है किन्तु उसके अवन्ती के अधिकार कौन छीन सकता है?

समुद्र के उस पार कविकीर्त्ति—

यूरोप में सर्वप्रथम कालिदास के काव्य का प्रचार विलियम जोन्स ने किया, अर्थात् जब प्रथमतः ये भारतवर्ष में न्यायाधीश के पद पर नियुक्त हुए तो उस समय इन्हें हिन्दू धर्मशास्त्र के समझने की आवश्यकता हुई और क्योंकि इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए संस्कृत-भाषा का ज्ञान अनिवार्य था, अतः उन्होंने संस्कृत भाषा सीखी।

उसी समय उन्होंने अपनी मातृ-भाषा में शकुन्तला का अनुवाद कर डाला। यद्यपि यह अनुवाद प्राथमिक प्रयास होने के कारण उतना उत्कृष्ट नहीं हो सका, तथापि जर्मन कवि 'गेटे' तो उसीको पढ़कर मुग्ध हो गए, और स्तुति में उन्होंने एक पद्य बनाया, जिसका भाव यह है :—

'यदि कोई वसन्त-ऋतु के कुसुम और शरद्-ऋतु के फल प्राप्त करने का इच्छुक हो, यदि कोई मन को अपनी ओर आकर्षित करना चाहे, अर्थात् वशीकरण का प्रत्यक्ष प्रमाण देखने का इच्छुक हो, यदि कोई पृथ्वी और स्वर्ग को एक ही स्थल पर देखने की अभिलाषा रखता हो, तो एक बार अवश्य कवि सार्वभौम श्री कालिदास के शाकुन्तल को देखे।'

जब हमारा ध्यान जर्मन कवि 'गेटे' के इस पद्य की ओर जाता है, तब हमें मुक्त-कण्ठ से कहना पड़ता है कि स्वर्ग में पहुँच जाने पर भी जब महाकवियों की प्रचुरगुण-युक्त वाणी, तीनों लोक को मुग्ध किए बिना नहीं रहती, तो फिर वे कविजन क्यों न विश्ववन्द्य हों ? कवि 'गेटे' की उपर्युक्त प्रशंसात्मक पद्य-रचना से कालिदास की कीर्त्ति यूरोप में एकदम चारों ओर फैल गई।

जब श्री 'शॅजी' ने फ्रेंच भाषा में शाकुन्तल का अनुवाद किया, तो दूसरे श्री आर० पिश्चले' ने भी एक उत्तम आलोचनात्मक संस्करण सन् १८७७ में प्रकाशित कर दिया। उसमें पाठ-प्रणाली वही रखी गई जो बंगाल में प्रचलित थी। देवनागरी पाठ-प्रणाली का अनुसरण करते हुए शाकुन्तल नाटक के अन्य कई संस्करण प्रकाशित होते गए। उनमें एक तो श्री आ० बॉटलिक द्वारा प्रकाशित हुआ, दूसरा जर्मन-भाषा में 'रुकर्ट' ने सन् १८७६ में अनुवाद किया, उसी वर्ष 'फ्रीटस्' का भी अनुवाद निकल गया।

हां तो, प्रथमतः कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल के पढ़ने से ही यूरोप के विद्वानों का ध्यान संस्कृत-भाषा की ओर विशेष आकृष्ट हुआ; फिर तो गीर्वाण-गिरा का प्रचार दिनों-दिन बढ़ता ही चला। धीरे-धीरे कालिदास के अन्यान्य काव्य-नाटकों के अनुवाद भी प्रकाशित होने लगे। सन् १८५७ में मि० आर० पिश्चले ने विक्रमोर्वशीय नाटक को सम्पादन कर प्रकाशित किया।

डॉ० विलसन और केविल, इन दोनों ने भी इसका अनुवाद किया (मि० कोविल का अनुवाद सन् १८५१ में प्रसिद्ध हुआ)। इसी प्रकार क्रमशः सन् १८८० में 'फ्रीटस्' ने लिपजिक से भी एक अनुवाद निकाला। मालविकाग्निमित्र का अनुवाद मि० सी० एच० टोनी ने सन् १८६१ में किया। जर्मन-भाषा में मालविकाग्निमित्र का अनुवाद पहिले सन् १८६५ में 'मि० ए० बेवर' द्वारा भी हो चुका था। शाकुन्तल का अनुवाद 'मि० मोलियर विलियम्स' ने भी किया है।

कालिदास के काव्यों में रघुवंश भी श्रेष्ठ काव्य माना जाता है, वास्तव में उसमें एक ऐसी विशेषता है कि जो अन्यान्य काव्यों में नहीं दिखाई देती। उसमें मुख्य पात्र बीच में ही लुप्त हो जाता है, किन्तु फिर भी आश्चर्य यह है कि कथा की श्रृंखला अटूट और अखण्ड रही है; तथा उसका रस भी अक्षत रहा है। सन् १८३२ में 'स्टेन्जलर' साहब ने रघुवंश का लेटिन-भाषा में अनुवाद किया; तथा सन् १८२८ में कुमारसम्भव का भी लेटिन-भाषा में अनुवाद कर डाला। मि० ग्रीफिथ साहब का किया हुआ उक्त काव्य का अनुवाद अंग्रेजी-भाषा में सन् १८७९ में प्रकाशित हुआ था।

कालिदास के काव्यों में मेघदूत उत्कृष्टकोटि का खण्ड काव्य है। जिस समय गेटे ने इसे पढ़ा तो वे सहसा आनन्द-सागर में गोता मारने लगे। इसका भी अनुवाद 'स्टेन्जलर' ने सन् १८७८ में किया था। डॉ० विल्सन ने तो इसका तत्सम अंग्रेजी भाषा में पद्यानुवाद ही कर डाला (१८६७ में प्रकाशित)।

सन् १८८२ में टी० क्लार्क का किया हुआ मेघदूत का अनुवाद लन्दन नगर में, तथा मेक्समूलर द्वारा मेघदूत का जर्मन-भाषा में किया हुआ अनुवाद १८४७ में, और स्कूट्ज का १८५६ में तथा फ्रीट्ज का अनुवाद भी सन् १८७६ में प्रकाशित हुआ था। इसके सिवा अनेक अनुवाद हुए हैं। एच० जी० रुक का श्रेष्ठ है, उसपर रवीन्द्रनाथ ने पद्य में भूमिका लिखी है।

'ऋतु-संहार' काव्य कालिदास की सबसे छोटी रचना है। सम्भव है कि यह कवि की प्राथमिककृति हो। किन्तु प्रतिभा इसमें भी झलकती है। मुग्धानलाचार्य (मेक्डोनल) ने इस लघु-काव्य की बड़ी प्रशंसा की है। इसका अनुवाद भी लेटिन एवं जर्मनभाषा में किया हुआ था।

इसके पश्चात् भारतीय विद्वानों द्वारा भी कालिदास के काव्य अंग्रेजी में अनुवादित हुए, उनमें सर्वप्रथय महामना अरविंद घोष का किया हुआ विक्रमोर्वशीय नाटक का अंग्रेजी पद्यानुवाद अप्रतिम एवं अपूर्व माना गया। इससे यह अवश्य ज्ञात होता है कि संसार के सारे विश्वकवियों में कालिदास का जैसा स्थान है, वैसा ही उनके काव्यों का भी पूर्णरीत्या आदर है।

मोनियर विलियम्स का कहना है कि कल्पना-शक्ति की प्रबलता और मानवीय अन्तःकरण का उत्कृष्ट ज्ञान, तथा रचना-चातुर्य, आदि गुण कालिदास के इतने बढ़े-चढ़े हैं कि उन्हें संसार का एकमात्र महापुरुष, तथा भारत का शेक्सपीयर ही कहना चाहिये।

अनुवाद, अनुकरण—

भगवद्गीता की टीकाओं की तरह ही कालिदास के काव्यों की टीकाएँ भी अनेक हैं। अकेले मेघदूत की लगभग २० टीकाएँ उपलब्ध हैं, मेघदूत के अंग्रेजी आदि विदेशीभाषाओं के अनुवाद तो हैं ही, पर भारतीयभाषाओं में कम अनुवाद नहीं हैं। हिन्दी में लगभग ११ अनुवाद उपलब्ध हैं, ब्रजभाषा में भी एक है, और मालवी-भाषा का अनुवाद अमुद्रित है, इसी प्रकार उर्दू का अनुवाद भी 'विक्रम' में अंशरूप में छपा है, मराठी में कई अनुवाद प्राप्त हैं; विष्णुशास्त्री चिपलूणकर का उनमें उत्तम है।

हमारे वित्तमन्त्री सर चिन्तामणि देशमुख ने भी एक अनुवाद किया है। गुजराती भाषा में १२ अनुवाद उपलब्ध हैं, उनमें स्व० किलाभाई घनश्याम का अनुवाद अप्रतिम है। बंगला में भी ३ अनुवाद हमने देखे हैं। पता नही मद्रासी, तेलुगू, कन्नड़ आदि भाषाओं में मेघदूत के अनुवाद कितने हैं? परन्तु कालिदास के साहित्य पर उस प्रदेश का अनुराग किसीसे कम नही है। मेघदूत के अनुकरण में भी पचीसों दूत-काव्यों का आविर्भाव हुआ है और उसके चरणों को लेकर जैन-कवियों ने सुन्दर रचनाएँ की है। इस प्रकार कालिदास के काव्य ने जैसी व्यापक लोकप्रियता प्राप्त की है शायद ही विश्व के किसी कवि को प्राप्त हुई हो।

कालिदास का साहित्यानुशीलन—

कालिदासीय साहित्य के अनुशीलन में महाराष्ट्र सदैव अग्रणी रहा है। आज भी विद्वानों में यह प्रवृत्ति वर्तमान है। हिन्दी में जितना अनुराग स्व० द्विवेदीजी ने सरस्वती-सम्पादनकाल में लिया है, उतना शायद ही अन्य ने लिया हो। आज डॉ० वासुदेवशरण और पं० हजारीप्रसाद द्विवेदीजी इस दिशा में मौलिक चिन्तन करते रहते हैं, मराठी में कालिदास के ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक स्वरूप पर अनेक ग्रंथ प्रकाश में आये हैं। गुजरात के विद्वानों ने भी मराठी के बाद पर्याप्त प्रयत्न किया है, उनमें स्व० ध्रुव, स्व० किलाभाई, रामनारायण पाटक, प्रो० बलवन्तराय ठाकुर, न्हानालाल का स्थान प्रमुख है। स्व० ध्रुव और स्व० किलाभाई के श्रम सर्वथा मौलिक महत्त्व रखते हैं, और कवि के सम्बन्ध में अनेक महत्त्व के विषयों पर प्रकाश डालते हैं। योगी अरविंद और महाकवि रवीन्द्र के सिवा बंगाल के स्व० म० म० हरप्रसादजी शास्त्री, म० म० विधुशेखर भट्टाचार्य जैसे प्रख्यात पुरातत्व-विदों ने कवि के साहित्येतिहास पर विविध दृष्टिकोण से विचार किया है। विक्रम के द्वारा इन पंक्तियों के लेखक ने लगभग ४–५ वर्ष विक्रम कालिदास की ओर प्रेरणा देनेवाले साहित्य का प्रकाशन किया है। १९३७ के यूरोप भ्रमण में हमें जर्मनी, इटली और फ्रांस के विद्वानों के सम्पर्क में आने का अवसर उपलब्ध हुआ था, और कालिदास की अवन्ती के निवासी होने के कारण कालिदासीय स्मारक के सम्बन्ध में अनेक बार जिज्ञासा की गई है। वहां से वापस आते ही 'कालिदास स्मृति-दिवस' मनाने की भावना जागृत हुई, तब से सतत प्रयत्न होता रहा है। उसके फलस्वरूप विक्रम और कालिदास की ओर जनप्रवृत्ति भी पर्याप्त हुई है। बहुत-से साहित्य का निर्माण भी हुआ है, अनेक पत्र-पत्रिकाओं में कालिदास सम्बन्धी चर्चा भी निरन्तर हुई, और होती रहती है। देश के विभिन्न भागों में कार्तिक शुक्ला ११ के दिन प्रतिवर्ष महाकवि की स्मृति मनाई जाती है। यही नहीं रूस, चीन आदि में भी महाकवि की स्मृति मनाई गई है।

हमारी राष्ट्रीय विभूति कालिदास उपेक्षित—

किन्तु कालिदास के इस देश में उसे जैसा व्यापक स्वरूप राष्ट्रीय-रूप प्राप्त होना चाहिये वह अभी भी नही हुआ है। यूरोप में आज शेक्सपीयर जैसे महान् साहित्यकार को अनेक राष्ट्र राष्ट्रीय-दृष्टि से अर्घ्य अर्पित करने में अपना कर्तव्य अनुभव करते हैं। वह भावना हमारे देश में अब भी जागृत नही हो पाई है। शासनों को कोई अनुराग प्रतीत नही होता, स्वतन्त्र देश हो जाने पर भी हमारी सास्कृतिक भावना उद्बुद्ध नहीं बन रही है, यह बड़ी चिंता की बात है। हम विदेश की प्रगति पर दृष्टि रखते हैं किन्तु उसकी शेक्सपीयर सम्बन्धी राष्ट्रीय रूप प्राप्त करनेवाली विभूति-पूजा की कैसे उपेक्षा करते हैं! जितना अनुराग विदेशियों ने कालिदास में लिया है, हम उससे भी प्रेरणा प्राप्त नहीं करते। चाहिये तो यह था कि हमारी समस्त देशीय सास्कृतिक और शिक्षण संस्थाएं महाकवि के प्रति एक दिन आदर व्यक्त करती, और शासन उन्हें प्रेरित करता। हमारे विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयो में कालिदासीय साहित्य के अन्वेषण, अनुशीलन, अध्ययन के लिए अभिनव दृष्टिकोण से अन्वेषित करनेवाले विद्वानों को उपाधि देकर प्रोत्साहित प्रेरित किया जा सकता है। दो सहस्र वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी जिस कवि का साहित्य अन्वेषक की प्रतिभा को नित्य नवीन स्फूर्ति प्रदान करता है, वह हमारे विश्वविद्यालयो के ज्ञान-सवर्धन-अनुशीलन का विषय नहीं बन सकता है? स्वतन्त्र राष्ट्र में भी उसके राष्ट्रीय सम्मान का भाजन कवि उपेक्षित रहने दिया जा सकता है? कितनी विचित्र बात है!

मतभेदों की परंपरा—

कालिदास के काल के विषय में मतभेद है, स्थल के विषय में मतभेद है, व्यक्तित्व के विषय में मतभेद है, और कृति के सम्बन्ध में भी। ये मतभेद यद्यपि जीवन के लक्षण हैं। वैसे तो मेघदूत वर्णित रामगिरि, देवगिरि, अलका आदि स्थल-संकेतो पर भी सन्देह स्थापित किया जाता है, किन्तु ये वाद-चर्चाएं प्रशंसनीय हैं कवि की महत्ता की प्रतीक हैं।

स्मृतिदिन के सम्बन्ध में—

परन्तु महाकवि की स्मृति-पूजा का एक दिवस निश्चित करने के लिए भी मतभेद को अवसर दिया जाता है। अवश्य ही कतिपय बंगाली बन्धुओं तथा कालिदासीय साहित्य से स्वल्प-परिचित जनों को छोड़ 'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे' के अनुसार आषाढ़ मास में स्मृति मनाने का अनुरोध महत्त्व नहीं रखता; आज देश के अधिकांश भाग में कार्तिक शुक्ला एकादशी ही स्वीकृत है। आरम्भ में हमें इस दिन की स्थापना के लिए विवाद-चर्चाओं का सामना करना पड़ा है, किन्तु कालिदासीय साहित्य के कीर्ति-

लब्ध विद्वान् महामहोपाध्याय श्री मिराशीजी एम० ए० ने अपने 'कुन्तलेश्वर दौत्य' वाले लेख में 'कार्तिक' का आरम्भ ही में जोरदार समर्थन किया है। विक्रम वर्षारम्भ के रूप में तथा कालिदास और विक्रम की एकता के अनुरूप हम अवन्ती-विक्रम और कालिदास की इस त्रिपुटी को उचित रूप में कार्तिक शुक्ल में ही स्मरण कर सकते हैं। जो लोग बंगाल के आन्दोलन से परिचित नहीं हैं, वे आषाढ़स्य प्रथम दिवसे की भावना में एक प्रांतीयता को अनजाने प्रेरित करते हैं। वस्तुतः कालिदास के नाम के साथ ही विक्रम की स्मृति सजग होती है, और विक्रम-कालिदास के युगल के साथ ही अवन्ती भी सहसा समन्वित हो जाती है। इन तीनों को एकत्रित करनेवाला विक्रम का वह वर्षारम्भ है, जिसमें उसकी स्मृति निहित है—वह कार्तिक शुक्ल ही है। यही समस्त गुजरात, मालव एवं व्यापार-जगत् में व्याप्त है। मेघदूत के आरम्भ से तो हम विरह-व्यथित यक्ष की करुणाधारा का आषाढ़ में स्मरण करते हैं, किन्तु मेघदूत के ही माध्यम से कवि की स्मृति मनाने को उद्यत हों तब भी हमें उसके 'शापांतो मे भुजग-शयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ' शापांत हो जाने पर देवोत्थापन के मंगल प्रसंग में विरहावस्था समाप्त हो जाने पर ही क्यों न मनाएँ। यह समय भी कार्तिक ही आएगा, और कार्तिक ही विक्रम वर्षारम्भ होने के कारण महाकवि, उसके आश्रयदाता और अवन्ती तीनों को एक साथ स्मरण करा देता है। इसमें मतभेद का कहां अवकाश रहता है? हम इतिहास और परम्परा को भी इस तरह समन्वित कर लेते हैं। आशा है कार्तिक शुक्ला एकादशी को महाकवि की स्मृति-पूजा का सर्वत्र आयोजन होगा।

भास और कालिदास

इतिहासविदों ने स्वीकार कर लिया है कि भास कवि का समय ईस्वी सन् के पूर्व का है, भास के नाटकों की कला विशिष्ट प्रकार की रही है। उस कला से प्रभावित होकर महाकवि कालिदास ने अपने नाटकों की रचना की है। यही कारण कि कालिदास के नाटकों में भास की कृतियों की प्रतिच्छाया अनेक स्थलों पर स्पष्ट दिखाई देती है, जिस प्रकार भास का पात्र आश्रम में नायिका से मिलता है, कालिदास का नायक भी आश्रम में मिलता है, विदूषकों की कृतियाँ भी समान हैं। उस समय तापसों के दो वर्ग थे :—एक एकांतसेवी संयमी, आश्रमजीवी था, दूसरा संघ बनाकर नगरों में घूमा करता था। वासवदत्ता-नाटक में प्रधान यौगंधरायण ने ब्राह्मण-परिव्राजक का रूप धारण किया था, जब वत्सराज उदयन के अवन्ती में कैद होजाने पर गुप्त वेष में रहा था, ठीक उसी प्रकार मालविकाग्निमित्र में पंडिता कौशिकी पात्र है, जो ब्राह्मण परिव्राजिका के रूप में है। इससे ज्ञात होता है कि कालिदास और भास के काल में अधिक अंतर नहीं रहा होगा। भास की नाट्य-कला में कालिदास ने थोड़ा ही हेर-फेर कर अपनी नवीनता रखी है। भास के नाटक वासवदत्ता में इतिहास की घटना है, कल्पना नहीं। उदयन द्वारा वासवदत्ता-हरण में नीलगिरि गज का प्रयोग हुआ है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी इसका संकेत स्पष्ट है—हस्तिकामं नागवनपाल-हस्तिना लक्षण्येन प्रलोभ येयुः (कौ० अ० शा० १३।२)। इसी कथा को कालिदास ने मेघदूत में—'उदयन कथा-कोविद ग्रामवृद्धान' तथा 'अभोद्भ्रान्तः किलनल गिरिस्तम्भमुत्पाट्य दर्पात्' आदि शब्दों में सूचित किया है। उज्जैन के ग्रामवृद्ध इस घटना को जानते रहे होंगे। इसीलिए कालिदास ने सुनकर चर्चा की है। इससे भी ज्ञात होता है कि कालिदास का समय भास के निकट का ही है। नीलगिरि के मत्त होने और उदयन द्वारा वश में करने की घटना अवन्ती की है। यह कोई हजार-पाँच-सौ वर्ष तक ग्रामवृद्ध में प्रचलित नहीं रही होगी। कुछ काल पूर्व की ही घटना होने से यह जनकथा का विषय बन चल रही होगी, जिसे कवि ने सुना है और सूचित किया है।

शुंग अग्निमित्र ब्राह्मण था, मालविका से उसने विवाह किया है। यही बात भास ने उदयन के सम्बन्ध में बतलाई है। महासेन ब्राह्मण था, शौनक उसके पिता का नाम था और उदयन पांडववंशीय क्षत्रिय था। उस काल में प्रतिलोम विवाह प्रचलित था। ईस्वी सन् की चतुर्थ शति के अंत में मौर्य चन्द्रगुप्त ने भी ग्रीक सेल्यूकस की पुत्री को ग्रहण किया था। यह प्रथा उस समय प्रचलित थी। कालिदास और भास उसका अनुकरण करते हैं। यही नहीं, कविता, छन्द, प्रयोग, शैली, घटना आदि में भी बहुत-कुछ भास-कालिदास की कृतियों में साम्य है। जिस प्राकृत के प्रयोग भास-कालिदास ने किए हैं, वह ईस्वी सन् पूर्व ही प्रयुक्त होती थी, उसके बाद की कृतियों में वह नहीं मिलती।

कालिदास की विदिशा

चन्द्रगुप्त द्वितीय को शक-विजेता-'विक्रमादित्य' मानकर महाकवि कालिदास को भी उसी समय का मान लिया जाता है, किन्तु अनेक अध्ययनशील मौलिक-मति मनीषियों की मान्यता में प्रथम विक्रमादित्य ई० स० पूर्व ५७ में रहा है, और कालिदास का काल भी वही होता है। कालिदास के ग्रंथों में जो अन्त: साक्ष्य उपलब्ध होते हैं, उनसे भी इसी विचार की पुष्टि होती है, पहली बात महत्वपूर्ण यह है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय का शासन यद्यपि विस्तृत रहा है, पर उसकी राजधानी कभी उज्जैन नहीं रही। कथा सरित्सागर (११वीं शती) में—'विक्रमादित्य इत्यासीद्राजा पाटलिपुत्र के, यह स्पष्ट ही बतलाया है और ११वीं शती में यह भी प्रचलित था कि स्वतंत्र-विक्रमादित्य अवन्ती-राजधानी का अधिकारी था, यह उल्लेख इसी कथा सरित्सागर में मिलता है, इस ग्रंथ का निर्माता उस समय अवन्ती और पटना के दो विक्रमों की कथा-गाथा से पर्याप्त परिचित प्रतीत होता है, तब हमें उन आधुनिकों के अभिमत पर विस्मय होता है, जो प्रथम विक्रम को सर्वथा उपेक्षित कर द्वितीय (चन्द्रगुप्त) को ही एकमात्र शकारि विक्रम मानते जाते हैं। कथा सरित्सागरकार ने प्रथम विक्रम को प्रचण्ड पराक्रमी, शकों से भूमि का भार हरण करनेवाला, समस्त पृथ्वी का 'एकच्छत्र-चक्रवर्ती' माना है। परन्तु, हमारी मान्यता तो यह है कि महाकवि कालिदास प्रथम विक्रम के अभ्युदय-काल में उसकी सभा का पंडित, 'नृपसखा' अवश्य हो जाता है। पर वह विदिशा के प्रथित-शुंग शासन में ही अवतरित होता है। कवि ने एकमात्र नाटक 'मालविकाग्निमित्र' के निर्माण में पहली बार किसी शासक-व्यक्ति को माध्यम बनाया है। वह भी साधारण राजा 'अग्निमित्र' को, जिसका शौर्य, चरित्र और शासन भी उतना उन्नत नहीं है। अवश्य ही यह महाकवि की प्रथम-नवीन कृति होना चाहिए, जिसके माध्यम से उसने 'भास' जैसे महान् नाटककार की ख्याति के प्रभाव में अपने को ऊपर उठाने के लिए ऐसे साधारण चरित्र के नायक को लेकर नाटक-रचना की और विदिशा के शासन में प्रतिष्ठा-प्रभाव प्राप्त किया होगा, यद्यपि मालविकाग्नि-मित्र के नाटकीय तत्वों में कालिदास ने नवीनता का आश्रय लिया है, परम्पराओं के अवलम्बन के साथ ही नये 'टेकनिक' भी अपनाए हैं। परन्तु, यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि भास के नाटकों का प्रभाव उस पर अधिक है। भास के

कथानक, स्थान, पात्र शैली और छन्दों में बहुत अधिक साम्य है जो फेर-फार है, वे बहुत थोड़े और कलापूर्ण हैं, किन्तु उनमें कवि की मौलिक प्रतिभा प्रकट होती है, इससे भी यही प्रतीत होता है कि भास की शैली का अनुसरण करते हुए भी उसने अपनी कृति में नवीन चमत्कारों का प्रवेश किया है, जिस प्रकार भास ने मालवे के ही ऐतिहासिक और जनविदित–ग्रामोंवृद्धों में लोकप्रिय कथानक वासवदत्ता के अपहरण की घटना को लेकर नवीन-नाटक की सृष्टि-कर मालव में प्रतिष्ठा-प्रभाव स्थापित किया, नवीन कवि कालिदास के लिए भी यही विवशता होजाना स्वाभाविक था कि अपने प्रदेश की वह ऐसी ही रोचक एवं जनप्रिय घटना को अपने नाटक का माध्यम बनाए, जो सामयिक हो और जन-प्रिय विषय हो। स्पष्ट ही उसे अपने सामयिक या निकट के ही शुंग अग्निमित्र को अपना पात्र बनाना पड़ा; क्योंकि यह विदिशा की ही घटना थी, आसपास के ही काल की घटना थी और जनता की जानकारी में थी, इस कारण उस ऐतिहासिक तथ्य को कलापूर्वक नाटक में निर्मित कर कवि ने प्रत्यक्ष कर दिया, फलतः ग्रामवृद्धों में प्रचलित भास के वासवदत्ता की तरह ही सहज यह नवीन रचना भी कालिदास की प्रतिष्ठा और प्रभाव बढ़ाने में सहायक बन गई होगी। महाकवि ने इस मालविकाग्निमित्र की रचना के पश्चात् एक भी ऐसी रचना नहीं की, जिसमें किसी साधारण-नायक, राजा-महाराजा को स्थान दिया हो। उसके बाद के निर्माण में उसके नायक उच्च-चरित्र के उदात्त ही रहे हैं, यह प्रकट करता है कि मालविकाग्निमित्र, उसके यौवनकाल, आरम्भकाल अथवा महत्वाकांक्षा एवं प्रतिष्ठा प्राप्त करने के काल की रचना है। उसने अग्निमित्र को प्रथमबार अपनी रचना का माध्यम बनाया है, यह प्रकट करता है कि वह शुंग-काल के समय या उसके अस्तकाल के निकट अवश्य रहा है और अग्निमित्र के शासन के, राजपरिवार के रहस्यों, घटनाओं का उसे मार्मिक ज्ञान था, यदि वह साधारण शासक अग्निमित्र पर नाटक निर्मित कर सकता है, तो वह विक्रम जैसे परम वीर, उदात्त-नायक पर कोई रचना न करता, यह कैसे सम्भव हो सकता था। चाहे वह प्रथम या द्वितीय विक्रम पर ही होती। यह बतलाता है कि उसका साहित्य-सृजनकाल शुंग-शासन या उसके अंत के अंतराय में रहा है। विक्रम के अभ्युदयकाल में महाकवि अपनी प्रौढ़ता के समय उनकी सभा में प्रतिष्ठा के साथ प्रविष्ट हुए होंगे, अन्यथा जो अग्निमित्र के लिए नाटक निर्मित करे, वह विक्रम समय में रह कर या अन्य मतावलम्बियों की तरह विक्रम के बहुत काल बाद चाहे वह द्वितीय चन्द्रगुप्त ही के समय ही क्यों न हो, क्यों नहीं वह प्रथम या द्वितीय विक्रम पर कोई कृति निर्मित करता ? अवश्य ही वह शुंग-शासन अथवा उसके पश्चात विक्रमाभ्युदय के मध्य-काल में रहा है, जहाँ केवल सामयिक इतिहास को लेकर 'मालविकाग्निमित्र' जैसी मधुर एवं लोक-रुचि की रचना के द्वारा प्रभाव स्थापित कर वह स्वतंत्र प्रौढ़ साहित्य सृजन करता रहा है।

शुंग-काल का अभ्युदय ही बौद्धों के ब्राह्मण-विरोधी अभियान के विरुद्ध रहा है और उसके शासक पुष्यमित्र ने विद्रोह कर मगध एवं मालवे में ब्राह्मण (शुंग) सत्ता का आरम्भ किया था, उसने बौद्धों का व्यापकसंहार किया, स्तूप, चैत्य-विहारों को ध्वंस किया और पुनः ब्राह्मण वर्चस्व बढ़ाने का प्रचण्ड उद्योग किया, अश्वमेध का आरंभ किया, दिग्विजय का प्रयास किया। यही कारण है कि कालिदास 'दिङ्नाग' की संकेत से अवहेलना करता है। अपने नाटक में बौद्धों का उपहास करता है। यदि वह गुप्तकाल में होता जब कि सभी धर्म-सम्प्रदाय को समान स्थान था, तो यह स्पष्ट नही होता कि वह बौद्धों की उपेक्षा करता; सबसे बड़ा प्रमाण तो यह है कि सांची के स्तूप जैसे उत्कृष्ट शिल्प-शृंगार की भव्यकृति विदिशा के निकटतम होते हुए भी वह विदिशा से लेकर मालवे के नदी-नद-नालों, वृक्ष मन्दिर स्थान तक का वर्णन स्पष्ट रूप से करता है। परन्तु साँची जोकि शुंग-पूर्व की रचना है, पड़ौस में रहते हुए भी कालिदास की सूक्ष्म दृष्टि से कैसे उपेक्षित करदी गई ? यह बतलाता है कि वह बौद्ध-विरोधी काल में रहा है और दिङ्नाग को जानकर उपेक्षित करता है।

यही क्यों, कालिदास अपनी प्रिय नगरी को विशाल-'विशाला' कहता है। उसके सौंदर्य, महत्त्व, वैभव का वर्णन भी करता है, किंतु उसे कहीं 'राजधानी' नही बतलाता। अवंती पर अपना अनुराग वर्णन करते हुए भी, वह महिमाशाली-महाकालेश्वर की पवित्र-नगरी बनी रह जाती है। शिप्रा का प्रियतम समीर मनोहरण कर लेता है और स्पष्ट शब्दों में समस्त देश और दिशा में प्रसिद्ध 'राजधानी' विदिशा (भेलसा) को ही वह बतलाता है। ('तेषांदिक्षु प्रथित विदिशा लक्षणां राजधानीम्')

इतना खुलकर कहीं भी महाकवि ने नगरी के वर्णन में मालवे के किसी स्थान को राजधानी का महत्त्व नहीं दिया। यह हमारी मान्यता को ही प्रमाणित करता है कि कालिदास शुंगकालीन राजधानी विदिशा (भेलसा) से कितना निकट परिचित रहा है। यदि वह प्रथम या द्वितीय विक्रमादित्य के समय का ही रहा होता, तो उसे विदिशा के बदले अवंती या मगध के महत्त्व को राजनगरी के रूप में स्मरण करना चाहिये था। द्वितीय चन्द्रगुप्त के पूर्व बहुत समय पर्यंत अवंती को राजधानी का गौरव मिल चुका था, वह उसे यह महत्त्व क्यों नहीं देता, यदि वह गुप्तकालीन है ? उसे अशोक और शुंग की विदिशा राजधानी को इतने लम्बे समय के बाद याद करने की क्या आवश्यकता थी ? विदिशा को राजधानी कह कर ही वह शुंग-काल के निकट में अपने अस्तित्व को प्रमाणित करता है।

अवश्य ही रघुवंश में केवल एक स्थान पर 'अवंतिनाथोयमुदग्र बाहुः' में अवंतीनाथ बतलाता है, पर यह भी रघुवंश-काल के क्रम का 'अवंतिपति' है, मालविकाग्निमित्र का नाट्य-कथानक सारा ही विदिशा पर अवलंबित है और मेघदूत में विदिशा को राजधानी सूचित करना यह स्पष्ट संकेत है कि कवि का सम्बन्ध विदिशा के शुंगों की निकटता रखता है। इन दो स्पष्ट उल्लेखों से भी कालिदास के 'काल' की हम कल्पना न कर, द्वितीय-विक्रम का कल्पित-काल पकड़ने में पांडित्य प्रकट करते हैं, यह आश्चर्य की बात है!

शुंग-कालीन अग्निमित्र की--'मालविका'

भारत में शुंग वंश का उदय ईसवी-सन् के पूर्व प्रथम शताद्वि में हुआ, इस वंश के अग्निमित्र की राजधानी विदिशा (वर्तमान-भेलसा) रही है। यह ऐतिहासिक-वंश है इसमें किसी को संदेह नहीं है। इसी वंश ने बुद्ध-प्रभाव को समाप्त कर पुन: वैदिक धर्म और ब्राह्मणत्व के वर्चस्व की इस देश पर प्रतिष्ठा की है, अश्वमेघ-यज्ञ की परम्परा जो विलुप्त हो गई थी, शुंगों ने फिर से आरंभ की थी, शुंग के इस यज्ञ का पौरोहित्य वैयाकरण पातंजलि ने किया था, यह महाभाष्य से प्रमाणित भी होता हैं। उत्तर भारत पर विजय करते हुए बौद्धों के गढ़ में जाकर पुष्य मित्र ने ही यह घोषणा की थी कि जो व्यक्ति एक बौद्ध मतावलम्वी का मस्तक काटकर लाएगा उसे १०० सुवर्ण दीनार प्रदान किये जावेंगे। यह सब होते हुए भी शुंगों (विशेषत: अग्निमित्र) की यह सहिष्णुता स्वीकार करनी होगी कि जब विदर्भ नरेश के सचिव की वृद्ध विधवा 'आर्याकौशिकी' नामान्तर से बौद्ध-भिक्षुणी बनकर अग्निमित्र के परिवार में रही, तब भी उसे स्नेह और सुरक्षा बुद्ध-विरोधी राजकुल में मिली थी। विदिशा के इसी शासन को राजधानी को महाकवि कालिदास ने 'प्रसिद्ध' बतलाया है। (तेषाँ दिक्षु प्रथित विदिशा लक्षणां राजधानीम्)।

इसी राजधानी के नरेश अग्निमित्र थे, और उनके राजपरिवार में 'मालविका' दासी बनकर रही थी, और नरेश उसके सौंदर्य पर मुग्ध बन गया था, जब शादी होने लगी तब यह ज्ञात हुआ कि विदर्भ राज कन्या-'मालविका' है। इसी की ऐतिहासिक घटना को लेकर कालिदास ने मालविकाग्निमित्र-नाटक की रचना की है, जो साहित्य-जग में अति प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय बनी हुई है। जैसा कि हम आरंभ में बतला चुके है यह ईस्वी सन् पूर्व प्रथमशति की घटना है और इतिहासज्ञों की यह धारणा है कि अवंती प्रदेश में मालव लोगों का आगमन पांचवी शति के आसपास हुआ है, पहिले वे पंजाब में थे, और बाद में राज-स्थान के कर्कोटक नगर में आए और वहां से इस प्रदेश में आए थे, क्योंकि मालवों के शिलालेख, इसी समय के इस या अन्य प्रदेश में उपलब्ध हुए है, तब यह देखकर आश्चर्य होता है कि जब इस प्रदेश में कोई मालव था ही नहीं तो यह अग्निमित्र की नायिका सुन्दरी मालविका अपना नाम मालव शब्द से अंकित कर विदिशा में ईसवी सन के पूर्व की प्रथम शति में कैसे उस समय प्रसिद्ध हो गई, विदिशा पूर्व मालव

की राजधानी थी, और मालविका भी विदिशा में प्रकट होती है ! यदि वह क्षणभर विदर्भ-राजकन्या है तो और भी आश्चर्य है कि जब मालव-जन विदिशा तक उस समय नहीं पहुँच पाए थे, तो विदर्भ में किस प्रकार इसे मालव-नाम रखने का आकर्षण उत्पन्न हुआ ? विद्वानों के लिए यह एक विचारणीय प्रश्न अजीब बन जाता है।

मालव-लोगों को 'गण' के रूप में सिकन्दर, और पाणिनीय काल में क्षुद्रकों के साथ जुड़ कर लड़ते देखने का उल्लेख पाकर बहुत से इतिहासज्ञ यह भ्रांत-धारणा बना, और चला रहे है कि वे पंजाब के निवासी थे, वस्तुतः वो इसी मालव प्रदेश से जाकर वहां विदेशियों से संघर्ष करने को एकत्रित हुए थे, यह 'महाभारत' के उल्लेख से भी प्रमाणित होता है। यही क्यों पुष्यमित्र के अश्वमेघ का अश्व भी सिंधुतटवर्ति यवनो ने घेर लिया था, वहां उसके पुत्र वसुमित्र ने जाकर उनपर विजय पाई थी, इससे भी यही प्रमाणित होता है कि ई० स० के पूर्व प्रथम शति में भी सिंधुतट पर यवनों का प्रभाव स्थापित था, और वहाँ यह मालव पहुँचकर लड़े थे। यह अश्वमेध की घटना कल्पित नहीं है, क्योंकि इसका उल्लेख महाभाष्य में पातंजलि ने 'इह पुष्य मित्रं याजयामः' पर किया है। महाभारत में अनेक बार मालवों का उल्लेख हुआ है। पूर्व, प्रतीच्य, उदीच्य मालव का वर्णन आया है। इस प्रदेश में विदिशा वे मालवों को पूर्व मालव ही माना गया है। माहिष्मती, और मंदसौर के मालव भी रहे हैं, माहिष्मती के हैह्य-मालवों ने राजस्थान के कर्कोटक-नगर को जीतकर माहिष्मती में मिला दिया था यह वर्णन ब्रह्माण्ड पुराण में स्पष्ट है।

"एषनागः सहस्त्रेषु माहिष्मत्यां महाद्युतिः।
कर्कोटक सुतं जित्वा पुर्यांतत्र न्यवेशयत् ।।"

इससे तथा अन्य प्रमाणों से भी यह विदित होता है कि कर्कोटक-नगर पर माहिष्मती के मालवों का अधिकार था, वहां यदि मालव की मुद्राएँ उपलब्ध होती हैं तो विशेष विस्मय का विषय नहीं और पंजाब में भी जिन मालवों का उल्लेख पाया जाता है, उन्होंने युधिष्ठिर को जाकर 'गेंहूं' का उपहार अर्पित किया था, यह ध्यान देने की बात है कि यदि मालव-जन पंजाब के निवासी ही थे तो यह 'गेंहूं' का उपहार क्यों दिया गया ? पंजाब में गेंहूं का इतिहास पुरातन नहीं है, वहाँ बहुत समय पूर्व गेंहूं की उत्पत्ति नहीं होती थी, और गेंहूं मालव-प्रदेश का ही विख्यात रहा है, मालवों द्वारा इस गेंहूं के भेंट करने का महत्व अवश्य है, यदि क्षणभर यह भी स्वीकार कर लें (जो कि सही नहीं है) कि पंजाब के ही गेंहूं का मालवों ने उपहार भेंट किया था, तो यह पंजाब प्रदेश में युधिष्ठिर को वहीं के गेंहूं भेंट करने का क्या अर्थ हो सकता है ? महाभारत में विन्द-अनुविन्द राजा उज्जैन के थे यह उल्लेख हैं।

और वे महाभारत समर में कौरवों की ओर से लड़े थे, यह प्रमाण है कि श्री कृष्ण ने इनकी बहन 'मित्र-विन्द्रा' का अपहरण कर शादी करली थी। जब उस समर में अश्वत्थामा-हाथी का वध हुआ तब उसे मालवेश का हाथी कहा गया है।

"परप्रमथनं घोरं मालवेन्द्रस्य वर्मणः अश्वत्थामा-हत इति"

स्वयं वात्स्यायन ने जो कामसूत्र का निर्माता है और उस का समय प्रथम-शति ही माना जाता है, उसने अवंती के रहने वालों को 'मालव' ही बतलाया है—

"आवंतिकाः—उज्जयिनी देश भवाः ता एव अपर-मालव्यः"

और

अपर मालव-पश्चिमेन-लाट-विषयः अर्थात् अपरमालवे के पश्चिम में लाट (वर्तमान गुजरात) बतलाया है।

यह बतलाता है कि प्रथम शति में भी अवन्ती के प्रदेश में रहने वाले 'मालव' कहे जाते थे। इसलिये यह 'मालविका' प्रथम शति के पूर्व भी इस प्रदेश की संज्ञा से ज्ञापित हो सकती थी। यह स्वाभाविक भी है।

जिस शिलालेख से मालवों को चौथी पांचवी शति में इस प्रदेश में मालव नाम देने की बात कही जाती है, उसे भी समझने में भ्रम किया जा रहा है।

अर्थात—

"मालवानां गण स्थित्या याते शतचतुष्ट्ये"

इसमें बहुत स्पष्टता से बतलाया गया है कि मालवों की गण-स्थिति को शत-चतुष्टय यानि ४०० वर्ष 'याते' बीत गए हैं। जिस मालव-गण को यहाँ ४०० वर्ष बीत गए हों वह शिलाखण्ड मिलने के समय इस प्रदेश में आये थे तो यह 'याते' (बीत जाने) की संगति कैसे लग सकेगी ?

परन्तु शुंग काल की 'मालविका' विदिशा में अपना नाम 'मालविका' रख कर इस प्रदेश में यह प्रमाणित करने को हमारे समक्ष प्रत्यक्ष है कि ई० सन् पूर्व की प्रथम-शति में भी यहां मालव थे, और 'मालविका' उसी का प्रमाण प्रस्तुत कर रही है।

स्कन्द-पुराणकार ने मालवे के ग्रामों की जन संख्या ११८१८० बतलाई है। और काव्य शिक्षाकार ने 'अष्टादश लक्षगण द्विनवत्यधिकानि मालवो देशः' अर्थात् १८ लाख ९२ जन संख्या सूचित की है।

और अभिधान चिन्तामणिकार ने स्पष्ट ही बतलाया है कि 'मालवास्युरवन्तयः' मालवी ही आवन्तिक है।

वाल्हीक-प्रदेश में मालव और क्षुद्रकों का अस्तित्व मिलता है। और वहां उन्हें 'आयुधजीवी' कहा गया है। इससे ज्ञात होता है कि थे मालवगण वहां सशस्त्र-सैनिक होंगे, क्योंकि स्वयं महाभारतकार ही वाल्हिक-प्रदेश के निवासियों को 'अनार्य' सूचित करता है। उन अनार्यों पर विजय पाने के लिए उन आयुधजीवी मालवों का जाना असंगत नहीं लगता। भगवद्गीता में जिस धनंजय को वीतिहोत्र (वीति होत्रो धनंजयः) कहा है। वह वीति होत्र भी आवंतिक थे। ब्रह्माण्ड पुराण में उन्हें 'वीति होत्रा-ह्यवंतयः' बतलाया है। ये वीतिहोत्र सहस्रार्जुन-माहिष्मती के ही रहें है। इन्हें ही अथर्ववेद में 'मल्व' नाम से सूचित किया गया था। यही मल्व आगे चलकर 'मालव' कहे गये हैं। 'मालविका' उसी प्रदेश-प्रेम का प्रतीक नाम है। वैदर्भी-राजकुमारी होकर भी वह विदिशा के राजवंश में 'दासी' बन कर अज्ञात रूप में रही, वहां उसने यही उचित समझा कि वह 'मालविका' बन कर प्रच्छन्न रहे, उसे यह नाम रख लेने की सूझ इस प्रदेश की प्रसिद्धि की कारण ही होना चाहिए, एक 'वैदर्भी' के लिए अपने को गोप्य रखने का यही सरल एवं सुविधा-जनक मार्ग हो सकता था। यदि मालव लोग इस प्रदेश में न होकर सुदूर पंजाब में रहनेवाले होते, तो सुदूर वैदर्भ-वासिनी, और विदिशा में प्रच्छन्न बन कर राजपरिवार के आश्रय पानेवाली दासी-रूप-धारिणी राजकन्या को 'मालविका' नाम धारण करने की कल्पना भी वैसे हो सकती थी ? चाहे स्वयं राजकन्या ने, या बौद्ध-सन्यासिनी आर्या कौशिकी ने (जो कि स्वयं विदर्भ के माधवसेन के सचिव सुमति की वृद्धा-विधवा भगिनी थी, वेष परिवर्तन कर राणि-धारिणी के पास आकर रह गई थी, इसका नाम भी कौशिकी कल्पित रहा है) या विदिशा की महाराणी-धारिणी ने इस दासी-रूप-धारिणी राजकुमारी का नाम 'मालविका' रखा हो, यह हम विदिशा में ही उसका नाम जान पाते हैं, विदर्भ के माधवसेन की बहन (मालविका) का मूल नाम क्या था यह सर्वथा अज्ञात बना हुआ है न तो कवि ने ही प्रकाश डाला है, न विदर्भ के किसी इतिवृत्त में ज्ञात होता है। अन्त में जब 'दासी' के रूप-रहस्य पर से पर्दा उठता है, तब भी इतना ही ज्ञात होता है कि यह मालविका ही विदर्भ राजकन्या रही है। और उसके अग्निमित्र से विवाहित हो जाने के साथ पटाक्षेप हो जाता है। आज हमारे लिए ई० सन् पूर्व की प्रथम-शति में प्राप्त यह 'मालविका' नाम, इस समय के इतिहासज्ञों के लिए एक चुनौती का विषय बन जाता है।

राशिचक्र का ज्ञान और कालिदास

भारतीय राज्य-परिषद् में हमारे मित्र श्री गोपीकृष्ण विजयवर्गीय जी ने कालिदास स्मृति मनाने के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया था। शासन की नीति के कारण, परिषद् में सर्वाधिक अनुकूल मत होने पर भी, इन्हें उसे वापिस लेना पड़ा। इस प्रसंग में संस्कृत साहित्य एवं धर्मशास्त्रेतिहास के प्रसिद्ध पंडित प्रो० कारणे ने राज्य परिषद् में कुछ बातें कहीं। प्रो० काणे ने कालिदास के काल पर विचार व्यक्त करते हुए कहा कि—"कालिदास ने राशियों द्वारा काल की चर्चा की है। ईसा पूर्व राशि-क्रम का कोई उल्लेख किसी साहित्य या शिल्प-ग्रंथ में दिखाएँ, मैं इसकी चुनौती देता हूं।" वस्तुतः राज्य परिषद् में ऐसी चुनौती का कोई स्थान नहीं था। किंतु उन्होंने राज्य परिषद् में जो 'चैलेंज' दिया है, उस पर चर्चा करना आवश्यक है।

प्रो० काणे के कथन का सारांश यह है कि ई० स० पूर्व 'राशिचक्र-क्रम' की किसी भी तत्कालीन ग्रंथ में चर्चा नहीं आई है। इसलिये चूंकि कालिदास ने कहीं-कहीं इनका संकेत किया है—जैसे "ग्रहैस्ततः पंचभिरुच्चसंस्थितैरसूर्यगैः- सूचितभाग्यसंपदम्" आदि, अतः वे ई० स० पूर्व में उत्पन्न नहीं हो सकते। विक्रम के नवरत्न वराहमिहिर के समय में अर्थात् ५वीं शती में उनका होना संभव है। यदि केवल इस प्रकार राशिचक्र के उल्लेख मात्र से ही कालिदास को प्रथम शती से हटाकर पांचवीं शती में उतार दिया जा सकता है तो आदि कवि महर्षि वाल्मीकि को भी खींचकर ईसवी की किसी शती में लाना पड़ेगा।

राशिचक्र और रामायण—वाल्मीक ने बालकाण्ड में राम-जन्म की चर्चा इस प्रकार की है:—

नक्षत्रे दिति-दैवत्ये स्वोच्चसंस्थेषु पंचसु,
ग्रहेषु कर्कटे-लग्ने वाक्पतौ विनुजा सह।
प्रोद्यमाने जगन्नाथः सर्वलोकनमस्कृतम्,
कौसल्याजनयद्रामं दिव्यलक्षणसंयुतम्॥ १०

और—

पुष्ये जातस्तु भरतो मीनलग्ने प्रसन्नधीः ।
सार्पेजातस्तु सौमित्रः कुलीरेऽभ्युदिते रवौ ।। १५

(बा० का०)

महर्षि वाल्मीक के समय के सम्बन्ध में अनेक मतभेद है। किंतु वे ई० पू० ४०० तथा ई० पू० २४०० तक मर्यादित है। इसलिये बालकाण्ड के इन श्लोकों को आधुनिक नहीं कहा जायगा। किन्तु कुछ विद्वानों की तरह प्रो० काणे भी उक्त श्लोकों को संभव है, 'प्रक्षिप्त' मानकर अपना मत प्रतिपादित करते हों। परंतु यह 'प्रक्षिप्त' सिद्ध करना भी सहज और सरल-साध्य न हो सकेगा।

रामायण काल में विभिन्न शास्त्रों में बहुत प्रगति हो गई थी। बतलाया गया है कि राम अनेक शास्त्रों में प्रवीण थे। वेदाध्ययन, गजाश्वारोहण, धनुर्विद्या (१-१-२७) आदि में उनके प्रवीण होने का उल्लेख है। इसी प्रकार भरत जब अपने मामा के घर कैकय-देश गये हैं तब वहाँ उन्हें अस्त्र, रथ, वाहन, गायन एवं शिल्प का ज्ञान देना (२-१-२२,२५) बतलाया गया है। भरत ने पिता की जिन विद्याओं के सीखने की सूचना दूत द्वारा दी है, उनमें हस्तिशिक्षा, धनुर्वेद, चित्र-कला, उड़ी मारना (छलांग) तैरना और ज्योतिष-शास्त्र के ज्ञान का भी (२-२-२८,२९) उल्लेख किया है। इसी प्रकार रामायण में गणक (१-१३-७) दैवचिन्तक, फल ज्योतिष (२-४-२१) का भी स्पष्ट उल्लेख है। गणक और फल ज्योजिष का जिस समय ज्ञान सुलभ होगा या इन विद्याओं का शास्त्रीय-रूप प्राप्त होगा तो अवश्य ही राशि, नक्षत्र, ग्रह, गणित का ज्ञान विस्तृत होना चाहिये। बालकाण्ड (९-१०-१५ श्लोक) में ग्रह-राशि का उल्लेख यदि प्रक्षिप्त समझा जाय तो भी रामायण में अनेक स्थानों पर ग्रह-नक्षत्रों और मुहूर्त-शकुन, शरीर-लक्षण-रेखाओं की चर्चा आई है। उन सभी को प्रक्षिप्त कैसे माना जा सकेगा ? इन चर्चाओं से यह स्पष्ट है कि ग्रह-नक्षत्रों का ही नहीं, शकुन, मुहूर्त, सामुद्रिक का भी उस समय पर्याप्त ज्ञान था। ये ज्योतिष के ही अंग हैं। फलित और मुहूर्त आदि की चर्चा नक्षत्र, ग्रह और राशिविज्ञान पर निर्भर रहती है। रामायण के बालकाण्ड के श्लोकों को प्रक्षिप्त कहा जाय तो इन अनेक जगह विस्तृत उल्लेखों को क्या कहा जायगा ? ग्रह नक्षत्रों, शकुनों, रेखाओं की चर्चा महाभारत में भी कई जगह मिलती है। किंतु महाभारत या रामायण ज्योतिष के ग्रंथ नहीं हैं कि इनमें समस्त राशि और नक्षत्रों का सविस्तर विवरण मिले। उनमें प्रसंगवश उनका संकेत मात्र किया गया है। उन संकेतों से उस समय के गणित-ज्योतिष-ज्ञान का अनुमान सहज ही किया जा सकता है।

वाल्मीकि रामायण के समय भी आकाश था। ग्रह-नक्षत्र और तारे भी थे। समय, स्थिति, ऋतु, काल-मान के ज्ञान के लिए इनकी जानकारी तत्कालीन विद्वानों, ऋषियों को होना स्वाभाविक है। वाल्मीक स्वयं साधक और यज्ञकर्ता थे। इसलिये उन्हें ग्रह-नक्षत्रों का ज्ञान जरूरी होगा। रामायण में अनेक राजप्रासादों, भव्य-भवनों, क्रियाकलापों का उल्लेख है। उनके लिये प्राचीन साधन, कालज्ञान एवं ग्रहज्ञान आवश्यक हैं। यह था भी रामायण के अन्य स्थलों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है। ज्योतिष शास्त्र का कई जगह उल्लेख हुआ है। अवश्य ही उस समय के शास्त्र-ग्रंथों का पता नहीं मिलता, परन्तु वेदांग ज्योतिष तो उस समय से पहिले की वस्तु है। फिर भी रामायण में ज्योतिष सम्बन्धी उल्लेखों के कारण उस युग में इस शास्त्र का होना सिद्ध होता है। संवत्सर का चक्र भी रामायण के समय अवश्य था ही। पंचांग में जिन तिथि, वार नक्षत्र आदि की आवश्यकता रहती है, वे रामायण में स्पष्ट मिलते हैं। रामचन्द्रजी ने जब वन जाना निश्चित कर लिया तब वे अंतःपुर में गए। तब तक सीता को उसकी सूचना नहीं थी। राम को उदासीन देखकर सीता ने उनसे पूछा—

> अद्य बार्हस्पतः श्रीमान् युक्तः पुष्येण राघव !
> प्रोच्यते ब्राह्मणैः प्राज्ञैःकेनत्वमसि दुर्मनाः ! (२-२६-६)

विद्वान् ब्राह्मणों का कहना है कि आज 'गुरुपुष्य योग' है। तब आप उदासीन क्यों हो रहे हैं ? जहाँ अंतःपुर की स्त्रियाँ भी 'गुरुपुष्य योग' से परिचित रही हो वहाँ राशि-ग्रह-नक्षत्रों का ज्ञान परिमित कैसे रहा होगा ? वार-गणना यदि बाहरी है तो यह स्वाभाविक उल्लेख कैसे संभव हो सकता था ? इसी प्रकार राम की जन्मतिथि नवमी और वनवास से वापिस आने की तिथि पंचमी का भी (६-१२१ और ६-१२५-२४) संकेत है। एक जगह रावण के सचिव सुपार्श्व के कथन में कृष्ण ४ और ३० का भी उल्लेख हुआ है।

मायामृग का मोहक रूप देखकर लक्ष्मण के द्वारा कहलाया गया है—

> एषनैवमृगःश्रीमान् पश्य दिव्यो नभश्चरः। (३।४३।३७)

राम लक्ष्मण आदि चारों भाइयों की चर्चा करते समय 'प्रौष्टपद' की उपमा दी गई है। यह प्रौष्टपद पूर्वा और उत्तरा भाद्रपदा के २—२ तारों का वर्णन है।

रोहिणी और चन्द्र का वर्णन ग्रंथकार ने कई बार किया है, और विभिन्न नक्षत्रों का प्रासंगिक वर्णन भी हुआ है। जैसे—मृग (३-४३-३०) अर्वसु (२-२-१२, २-३-४१,

३-१८-१२, ४-५७-२३) आदि। मघा (१-७२-२१), उत्तरा (६-४-६), हस्त (६-४-६), चित्रा (२-१६-१०, ३-१७-३), स्वाति (५-५७-२३, ४-६७-१९), विशाखा (६-७६-१४), श्रवण (४-५७-२३)। भरत जब गंधर्वों को जीतने के लिये चले तब 'सौम्य नक्षत्र' की चर्चा सुनूहुर्त की दृष्टि से की है। आकाश के 'धूमकेतु' ६-४-५२) सप्तर्षि, ध्रुव, शुक्र (३-१६-८) की चर्चा है। यह सारी बातें रामायण काल के पूर्व भी सर्वज्ञात रही हैं। परन्तु रामजन्म के समय पर जो राशि का उल्लेख है वह मारिशस्वाली प्रति में नहीं मिलता, और राम राज्याभिषेक के सम्बन्ध में जो लग्न-आदि (२-१५-२) का उल्लेख है वह लाहौर की प्रति में नहीं है। केवल इस कारण से संदेह करना ठीक नहीं, क्योंकि जहाँ नक्षत्र, मुहूर्त आदि की केवल पर्याप्त चर्चा ही नहीं प्रत्युत उनका विस्तृत ज्ञान भी दिखलाई पड़ता है, वहां राशिज्ञान का न होना कैसे संभव है ?

रोहिणी-शकट भेद योग जो मंगल द्वारा हो तो अनिष्टकारक होता है। इसका उल्लेख (५-१५-२२ तथा ६-२४-...) बतलाता है कि खगोल की महत्त्वपूर्ण और राशिनक्षत्र गणित-गति पर अवलम्बित घटना का मार्मिक ज्ञान रामायण काल में अवश्य था। यह रोहिणी-शकट भेद आज से ६ हजार वर्ष पूर्व हो चुका है। इस दुर्घटना से रामायण काल का समाज परिचित था, (महाभारत में यह भी चर्चा है) तभी उसका उल्लेख हुआ है। इससे स्पष्ट है कि रामायण से पूर्व हमारे देश में ज्योतिष-खगोल-ज्ञान पर्याप्त और परिमार्जित हो चुका था। यदि ज्योतिर्विज्ञान का पूर्ण विकास एवं परिचय न होता तो युवराज के राज्यभिषेक के सम्बन्ध में दशरथ यह क्यों कहते हैं कि "मेरे जन्म नक्षत्र पर सूर्य-राहु-मंगल आ रहे हैं। ज्योतिष कहते हैं कि ये मृत्युसूचक होते हैं, (२-४-१८,१९) इसका कारण राज्यभिषेक की आवश्यकता है।" यह स्पष्ट ही ज्योतिष के "फल-विभाग" से सम्बन्धित विचार है। इसी प्रकार फल-शास्त्र से सम्बन्धित अन्य उल्लेख भी हुए हैं—जैसे भरत जब राम को लौटाने के लिये गये तब उनकी सेना "मैत्र-मुहूर्त" पर प्रयाग में उतरी थी। (२-८९-२१) रावण ने जब सीता का अपहरण किया तब 'विन्दु-योग' था। ऐसी राशि में गई हुई वस्तु वापिस प्राप्त हो जाती है। (३-६८-१२-१३) वानर सेना समर के लिये जब प्रयाण करती है तब 'विजय का मुहूर्त था (६-४-३)। इसी प्रकार राम-रावण युद्ध में लक्ष्मण को शक्ति-शर लगा तब सीता ने भविष्यवाणी के गलत होने का संकेत किया है (६-४८-१२-१४) यहाँ सीताजी ने अपने सामूहिक लक्षणों की भी चर्चा की है। राम के दीर्घायुष्य की भविष्यवाणी की चर्चा भी ज्योतिषियों ने की थी। (६-३२-१२) रामायण काल में भविष्यवाणी की प्रथा काफी प्रचलित हो चुकी थी, और भविष्यवाणी ग्रह-नक्षत्र राशि पर अवलम्बित होती है। इससे यह मानना पड़ेगा कि चाहे स्वतंत्र राशियों की चर्चा रामायण में न भी

की गई हो पर इनका ज्ञान अवश्य होना चाहिये। यदि यह न होता और भविष्यज्ञान की तेजस्वी दृष्टि प्राचीन काल में प्राप्त न होती तो जिस समय वन में राम की आज्ञा से लक्ष्मण ने सीता को छोड़ा तब, लौटते हुए, सारथी सुमंत्र ने लक्ष्मण को कैसे बतलाया होता कि—"दुर्वासा ने दशरथ को वनवास आदि की बातें पहिले ही बतला दी थी।" (७।५०।५१) इन बातों से राम और भरत आदि के जन्म समय पर राशि-चक्रग्रह-योगों का सूचक श्लोक प्रक्षिप्त नहीं कहा जा सकता। यह ज्ञान उस समय अवश्य था। उस समय भविष्य कथन की प्रथा थी, जनता में अभिरुचि थी और इसके मार्मिक विद्वान् भी थे। इस पर जीविका कमानेवाले वर्ग का भी अस्तित्व था। उनका समाज और शासन में प्रवेश एवं सम्मान था। मुहूर्त का अवलम्बन फल ज्योतिष पर रहता है। रामायण में मुहूर्त का अनेक बार उल्लेख स्पष्ट है। फल-भविष्य, मुहूर्त की पुरातनता, प्रवीणता और प्रचार इससे सिद्ध होता है। स्वप्नों और शुभा-शुभ फल की धारणा भी रामायण काल में पर्याप्त थी। राम, भरत, दशरथ, सीता के अनेक स्वप्नों और उनके परिणामों की बात कई स्थानों पर आई हैं। शकुनों, मान्यताओं का भी समाज में ध्यान रखा जाता था। ज्योतिषशास्त्र की रामायण काल में पर्याप्त प्रगति हो गई थी। उसके जानकार और शास्त्र भी अवश्य थे। भविष्य के परिणामों के द्रष्टा और वक्ता विश्वामित्र, वशिष्ठ, दुर्वासा जैसे दिव्यदृष्टा ऋषि-मुनि भी थे और उनकी ग्रह-गणना महत्त्वपूर्ण थी। विवाह मुहूर्त भी उस समय अवश्य देखे जाते थे। जनक ने दशरथ को सूचित किया था कि—

मयाह्यद्यमहाबाहो तृतीयेदिवसेप्रभो, फाल्गुन्यामुत्तरेराजंस्तस्मिन् वैवाहिकंकुरु।

इसी प्रकार राम का प्रवास काल भी (१-७३-२४) यात्रा-मुहूर्त की दृष्टि से देखा गया था—

उत्तराफाल्गुनीह्यद्य श्वस्तु हस्तेन योक्ष्यते (६-४-६)

पुराकाल से नक्षत्र ही समय ज्ञान के प्रमुख साधन रहे हैं। इसलिए रामायण में सर्वत्र प्रायः नक्षत्रों की चर्चा मिलती है।

हमारे कुछ विदेशी-प्रभाव से प्रभावित विद्वानों की यह धारणा है कि भारत में प्रचलित-राशिचक्र गणना बाहर से आई है। इसीलिए रामायण के राम जन्म की राशिग्रह-गणना के उल्लेख को वे सहज ही 'प्रक्षिप्त' घोषित करने का साहस कर बैठते हैं। फिर भी वह ई० स० पूर्व ४०० भारत में प्रचलित हो गई थी, किन्तु वे यह कैसे विस्मृत कर देते हैं कि क्रान्तिवर्त के १२ भाग (राशि से) करने की कल्पना भारत में बहुत पूर्वकाल से प्राप्त होती है। इससे ये 'बाहर से आई हुई' सिद्ध नहीं

हो सकती। तथापि समग्र रामायण में अन्य ग्रह, नक्षत्र, भावी विज्ञानयोग, मुहूर्त-ग्रहण आदि के जो उल्लेख है, उनसे रामायण काल में राशिचक्र का ज्ञान अवश्य होना चाहिए, और इसी कारण रामजन्म के काल में जिन राशि-ग्रहों-योगों का उल्लेख हुआ है, वह प्रक्षिप्त नहीं हो सकता।

रामायण को पुराकालीन मानने को विवश होना पड़ता है। इ-ीलिए 'राशिचक्र' के विषय में अपनी विदेशविकृत धारणा की कसौटी पर रामजन्म की राशि-सूचना को प्रक्षिप्त कहने का साहस सहज कर दिया जाता है। यही स्थिति महाकवि कालिदास के राशि-ग्रहों के उल्लेखों की बना दी गई है। यह तो स्पष्ट है कि कालिदास का काल रामायण के बहुत बाद ही आता है। जब रामायणकार को ग्रह-नक्षत्र, मुहूर्त, योग, ग्रहण, भविष्य-कथा का व्यापक ज्ञान है, तब कालिदास के समय में उसका अधिक विकसित होना स्वाभाविक ही है। किन्तु जब हमारे पर-प्रत्ययनेयमति पंक्तियों की समझ में राशि-चक्र बाहर से आयत हुआ अनुभव होता है, तब कालिदास का कथित राशिचक्र कैसे उसे पुरातन रहने दे सकता है? केवल उसका सूचित राशि-चक्र ही उसे पहली सदी से खींचकर पांचवी-छठी सदी में रख देता है। किन्तु लोग यह जानते हैं कि रामायण का राशि कथन और अन्य ग्रहयोगों—राशि-ग्रह-नक्षत्रों—पर अवलम्बित भविष्य कथन के उल्लेख से यह प्रमाणित हो जाता है कि कालिदास के 'राशि कथन' के कारण उसे पहली शती से नीचे उतारने का कोई कारण नही है। रामायण यदि ईसापूर्व की कृति है तो कालिदास भी ग्रहराशि का उल्लेख करते हुए ईसवी-पूर्व में बने रह सकते हैं।

शतकत्रय के निर्माता और वाक्य-प्रदीप-व्याकरण के प्रणेता योगिराज भर्तृहरि के व्याकरण का संकेत शुंगकाल के महाभाष्यकार पातंजलि—जिन्होंने शुंग-शासक के अश्वमेध में पौरोहित्य किया था, (इह अश्वमेधं-याजयामः) निश्चय रूप से ई० पू० के विद्वान् हैं। उन्होंने भर्तृहरि के व्याकरण का महाभाष्य में उल्लेख (२।३।६४, ७।४।६२) किया है। इससे यह स्पष्ट है िए भर्तृहरि को कम से कम उनका सम-कालीन तो होना ही चाहिए। भर्तृहरि अवन्तीपति वीर विक्रमादित्य के ज्येष्ठ भ्राता माने जाते हैं, और अनेक देशी-विदेशी विद्वानों की सम्मति में विक्रम ई० स० पूर्व ५७ वर्ष में हुए हैं। भर्तृहरि का महाभाष्यकार का पूर्ववर्ती होना महाभाष्यकार द्वारा उनका उल्लेख ही प्रमाणित कर देता है। उस शतकत्रय के निर्माता भर्तृहरि के नीतिशतक के ६१वें श्लोक को कालिदास ने शाकुंतल में भी उद्धृत किया है। इससे यह माना जा सकता है कि कालिदास भर्तृहरि के समसामयिक या पूर्ववर्ती होने चाहिए। कुछ लोग नीतिशतक आदि के निर्माता-भर्तृहरि को ७वीं शती में हुआ बतलाते हैं। यदि ७वीं शती में भर्तृहरि को मान लिया जाय, और कालिदास को

कुछ विद्वानों के आग्रहवश पाँचवीं-छठी शती का ही समझ लिया जाय तो नीति-शतक के श्लोक का शाकुंतल में उद्धृत किया जाना सुसंगत नहीं हो सकता। भर्तृहरि ने यदि कालिदास के शाकुंतल का श्लोक उद्धृत किया हो तो यह कहना पड़ेगा कि शतकत्रय दूसरे के श्लोकों का संग्रह-ग्रंथ है। परन्तु नीति-शतक सुभाषित श्लोकों का संग्रह-ग्रंथ नहीं है जो परायी पूँजी पर निर्मित हो। वह स्वतंत्र काव्य है। उसमें कालिदास के श्लोक को उद्धृत करने की कोई आवश्यकता नहीं। इसके विपरीत यह अधिक संभव है कि एक नाटककार अपने किसी पात्र के मुख से समाज में प्रचलित किसी सुन्दर नीति-वाक्य को कहला दे। इस तर्क से भी भर्तृहरि कालिदास से पूर्ववर्ती हो जाते हैं। जबकि पहली शती से पहिले के पातंजलि भर्तृहरि का उल्लेख करते हैं तो स्पष्ट ही भर्तृहरि कालिदास से पूर्ववर्ती हैं। उसके पश्चात् होनेवाले या सम-कालीन कालिदास नीति-शतक के श्लोक को ग्रहण कर लेते हैं। अतएव रामायण के राशिकथन के अनुसार ही भर्तृहरि कथित राशिकथन ई० पू० पहली शती से पुराना प्रमाणित हो जाता अतएव रामायण के राशिकथन को 'प्रक्षिप्त' बतलाकर और राशिकथन का उल्लेख करने के कारण कालिदास को पाँचवीं शती में ढकेल देना निरर्थक दुस्साहस ही होगा और उसके लिए 'चैलेंज' देने की आवश्यकता नहीं है।

महाभारत एवं अन्य प्रमाण—वाल्मीकीय रामायण की तरह ही महाभारत में भी कुछ भविष्य-कथा के स्थल आए हैं। उद्योग पर्व के आठवें अध्याय में भी यह चर्चा हुई है। परन्तु महाभारत के कुछ विवेचक विद्वानों की यह सम्मति है कि ये सब व्यास के बाद सौती के जोड़े हुए वर्णन हैं।

महाभारत में नक्षत्रों का वर्णन तो अनेक स्थलों पर है। विद्वानों का कथन है कि मूल आर्यों की ज्योतिष-रचना नक्षत्रों पर निर्भर रही है। इसके विपरीत यूनानियों की रचना राशियों पर निर्मित है। अवश्य ही महाभारत में राशियों का स्वतंत्र उल्लेख नहीं है किंतु यह संभव नहीं मालूम होता कि जहाँ नक्षत्रों और भावी कथन एवं मुहूर्तों की चर्चा है वहाँ राशियों का विज्ञान अज्ञान होगा। यह ठीक है कि हमारा कालज्ञान सदैव नक्षत्रों पर आधारित रहा है। इसलिये उसको पुराण ग्रंथों ने महत्त्व दिया है। परन्तु राशिज्ञान भी तो नक्षत्रों से ही सम्बन्धित है। इसके अतिरिक्त अभी तक कोई प्रथित पंडित यह विश्वास और दृढ़तापूर्वक नहीं कह सकता कि राशिज्ञान बाहर से ही आयात किया गया है। महाभारत में जहाँ कहीं भी काल-निर्देश किया गया है वह नक्षत्रों पर ही किया गया है। और यह ठीक भी है क्योंकि काल-ज्ञान सर्वथा नक्षत्रों से ही सही जाना जा सकता है। महाभारत में युधिष्ठिर का जन्म, जब चन्द्र ज्येष्ठा नक्षत्र पर था, तब अभिजिनमुहूर्त में हुआ।

ऐन्द्रे चन्द्रसमारोहे मुहूर्तऽभिजितेऽष्टमे, दिवा मध्यगतेसूर्ये तिथौपूर्णेऽतिपूजिते ।।

इसमें यद्यपि राशि का उल्लेख नहीं है तथापि इसके टीकाकार धनुर्धर ने स्पष्ट रूप से 'तुलागते पूर्णे' किया है अर्थात् शब्द से 'तुलागते' लिया गया है। जो भी हो इतना तो स्पष्ट है कि राशिज्ञान का उल्लेख जहाँ मिलता है, और जो सिद्धान्त राशि-चक्र पर आधारित प्राप्त होते हैं, वे ई० सन् पूर्व के अवश्य हैं। स्वयं भारतीय ज्योतिषशास्त्र के इतिहास-लेखक और सर्वमान्य संशोधक विद्वान् शं० ब।० दीक्षित अपने ग्रंथ (पृ० १३६) में यह बड़ी खोज के साथ स्वीकार करते हैं कि ई० सन् के लगभग ४५० वर्ष पूर्व हमें राशिज्ञान अवश्य था, और यह यूनानियों के सम्पर्क के बाद हुआ है। इतिहासकार यह मानते हैं कि ई० सन् के पूर्व ३२३ वें वर्ष में सिकन्दर का आक्रमण हुआ था। तब से बराबर हमारा यूनानियों से सम्बन्ध बढ़ता रहा। भारतीय भी उनके साथ रहे हैं। ई० स० पूर्व ५०० वर्ष तक उनके साथ हमारा पर्याप्त सम्बन्ध मिलता है, जो ठेठ सन् ३०० ईसवी तक बराबर बना रहा है, क्योंकि स्वयं ई० पू० के पाणिनि ने भी यवनाल्लीप्याम्' कहा है। वह उनकी लिपि से भी परिचित था।

ग्रीकों और शकों का सम्बन्ध भी पुरातन है। मिनाण्डर स्वयं बौद्धकाल में रहा है। उसी पर 'मिलिन्द-प्रश्न' निर्माण हुआ है। यूनानियों (ग्रीकों) का परिचय भारत को ई० पूर्व का है। जिन भारतीय ज्योतिष ग्रंथों का निर्माण राशियों पर आधारित है वे भी ई० स० पूर्व के ही हैं। यह सर्वमान्य है। किसी भी अवस्था में राशिक्रम को ई० स० २०० वर्ष पूर्व बाद नहीं लाया जा सकता। यद्यपि श्री दीक्षित यह स्वीकार नहीं करते कि राशियों को हमने ग्रीकों या यूनानियों से प्राप्त किया है, तथापि वे ई० स० पूर्व में ही राशियों का अस्तित्व मानते हैं। ऐसी अवस्था में प्रो० काणे के चैलेंज का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। दीक्षितजी की यह मान्यता है कि राशियों की कल्पना हमारी ही है, वह दूसरों से प्राप्त नहीं है। और इतिहास तथा ज्योतिष शास्त्र के अधिकारी विद्वान् सी० वी० वैद्य ने भी कम से कम ई० स० ४५० वर्ष पूर्व, राशियों का इस देश में प्रचार स्वीकार किया है अवश्य ही दीक्षितजी उसे ई० स० ४५० वर्ष पूर्व, मानते हैं। तो भी दोनों अधिकारी विद्वान् उसे ई० स० के पूर्व ही का स्वीकार करते हैं, बाद का नहीं।

महाभारत में गर्ग नामक ज्योतिषी का उल्लेख है जिसने श्री कृष्ण का भावी भाषित किया है (शल्यपर्व)। उनको काल-ज्ञान, ग्रहगति और भूत-भविष्य का जानकार माना गया है। इसे कुछ विद्वान् ग्रीक मीनाण्डर के समय ई० स० १४५ वर्ष पूर्व का भी मानते हैं। पाणिनि ने भी इसका उल्लेख ज्योतिषी के रूप में किया है। इससे भी ई० स० राशियों का प्रचार होना मानना पड़ेगा। तब कालिदास को ई० स०

की प्रथम शती में स्वीकार करने में कैसे आपत्ति रह सकती है ? तब प्रो० काणे का 'चैलेंज' तो आधार-रहित एवं भावावेष का ही रह जाता है। महाभारत और रामायण के नक्षत्र—राशिक्रम को देखते हुए वह राशिक्रम पुरातन सिद्ध हो सकता है। श्री दीक्षितजी की ८५० वर्ष पूर्व (ई० स०) राशियों की बात क्षण भर के लिए छोड़ भी दें (जिसका कि कोई ठोस कारण नहीं है), तब भी यह सर्व विद्वत्सम्मत बात है कि ई० स० २०० वर्ष पूर्व राशिज्ञान हमारे यहाँ सर्वत्र प्रचलित ही था। इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। और इसी आधार पर कालिदास को पाँचवी शती में खींचने का जो दुराग्रह किया जाता है, वह भी सहज ही व्यर्थ हो जाता है। पाठकगण ऊपर के विचारों को देखकर इस निर्णय पर ही पहुंचेंगे कि प्रो० काणे ने राज्य-परिषद् में भ्रांत आधार पर जो हवाई महल खड़ा किया था, वह किस प्रकार ताश के पत्तों के भवन की तरह हवा के एक झोंके में ढेर हो जाता है।

अन्य प्रमाण—भारतीय 'अथर्व ज्योतिष' ग्रंथ अत्यंत पुरातन है। ज्योतिष को 'वेदांग' कहा जाता है, इसलिये उसकी वैदिक-संगति भी है। उसमें कहा है:—

ग्रहोल्काऽशनि निर्घातैः कंपैर्दाहैश्च पीड्यते, यद्यद्भयं भवतितद् तं प्रवक्ष्याम्यशेषतः।

इसमें स्पष्ट ही भावी के भय का भविष्य कहा गया है। इसी प्रकार वैदिक-वाङ्मय के आश्वलायन-सूत्र में जो महाभारत और रामायण से पुराना है, हल चलाने, उपवीत धारण करने, सीमन्तोन्नयन करने आदि के मुहूर्त और फलाफल बतलाये गये हैं। पारस्कर गृह्यसूत्र में मूलनक्षत्र के ४ चरणों का फल सूचित किया गया है। (१-२१) इसमें यह स्पष्ट हो जाता है कि क्रांन्तिवृत्त के १२ भागों का ज्ञान न हो तो नक्षत्र के चरणों (अंशों) का पता नहीं हो सकता। अतएव उक्त सूत्रकाल में १२ राशि का ज्ञान होना अनिवार्य है। बौधायन-सूत्र में भी बहुत स्पष्टता के साथ—

"मीनमेषयोर्मेषवृषभयोर्वसंतः"

कहकर राशि का उल्लेख किया गया है। मैत्रेय-सूत्र में भी "मासद्वये यदाप्येक राशि से क्रमेतादित्यस्तत्राद्यो मली म्लुचः शुद्धोन्यः" बतलाया गया है, और राशि का स्पष्ट वर्णन किया गया है। इसी प्रकार वैदिक निरुक्त के १४वें अध्याय में ज्योतिष की चर्चा भी देखने योग्य है।

हम ऊपर महाभारत के सम्बन्ध में बतला ही चुके हैं। उसमें १३ दिन के पक्ष, रोहिणी शकट-भेद, संक्रान्ति आदि का बहुत स्थानों पर वर्णन आया है। वनपर्व के अध्याय २०० में यह भी कहा है कि—

अयने विषुवे चैव षडशीतिमुखेषु च, चन्द्र-सूर्योपरागेच,दत्तमक्षय्यमुच्यते।

इसमें 'षडशीति मुखे' शब्द महत्त्वपूर्ण है। सूर्य सिद्धान्त में इस षडशीति मुखे की व्याख्या मिथुन, कन्या धनु और मीन, इन चार—राशियों के लिये की गई है।

मिथुनादिसंज्ञाओं से बोधित किये जाने वाले क्रान्तिवृत्त के भागों को 'षडशीतिमुखे' कहा जाता है। इस संकेत में राशियों का ज्ञान निहित है। वैसे ग्रहों की गति और वक्र-मार्ग गति के परिणामों की सूचनाएं भी महाभारत में स्पष्ट है।

वनपर्व के १८८वें अध्याय में युग-मान बतलाते हुए अनेक भविष्य की सूचनाएँ है, जो राशि पर निर्भर होती है। यथा :—

अस्मिन् कलियुगेप्यस्ति पुनःकौतूहलं मम।
यदा सूर्यश्च चन्द्रश्च तथा तिष्यबृहस्पतिः।

एक राशौ समेष्यन्ति प्रापत्स्यदि तदा कृतं। (९१ वन अ० १९०) में ग्रहों के एक 'राशि' पर आने का प्रत्यक्ष उल्लेख है। महाभारत काल में यदि राशिज्ञान न होता तो यह राशि का उल्लेख कैसे सम्भव हो सकता था ? इसी प्रकार धर्मशास्त्र का एक, ग्रंथ निर्णयामृत है। उसमें महाभारत से श्लोक उद्धृत किया गया है—

वार्षिकांश्चतुरोमासान् वृत्तं किंचित्समाचरेत्।
असंभवे तुलार्केतु कन्यायांतुविशेषतः॥

इसमें कन्या और तुलाराशियाँ स्पष्टरूप से बतलाई गई है।

निर्णयसिंधु के दूसरे परिच्छेद के महालय-प्रकरण में भी महाभारत से यह श्लोक दिया गया है—

यावच्च कन्या-तुलयोः क्रमादास्ते दिवाकरः,
शून्यंप्रेत-पुरंतावत् वृश्चिकं यावदागतः।

कन्या-तुला और वृश्चिक राशि का इस श्लोक में उल्लेख हुआ है। स्मृतिकार ने उक्त श्लोकों को महाभारत से उद्धृत किया बतलाया है। अवश्य ही आज की उपलब्ध प्रतियों में ये श्लोक महाभारत में नहीं मिलते। किन्तु सदियों पूर्व स्मृतिकार जब महाभारत के नाम पर इन्हें अंकित करते हैं तो ये उस समय अवश्य महाभारत में प्राप्त होते होंगे। अन्यथा स्मृतिकार उन्हें महाभारत से उल्लिखित न करते।

क्षण भर के लिए हम इन दो श्लोकों को स्वीकार न भी करें तो भी इतने अधिक प्रमाण प्राप्त होते है कि राशिचक्र का ज्ञान ईस्वी सन् से पूर्व में होना प्रमाणित हो जाता है। बाहरी विद्वानों के मतों से भ्रमित होने की हमें आवश्यकता नहीं है।

महाकवि कालिदास के समय पर व्यापक विचार

जिस प्रकार स्मिथ की फैलाई हुई भ्रांत धारणा के कारण, विक्रमादित्य के समय के विषय में अनेक अनुकरणशील विद्वानों ने ई० स० पूर्व ५७ वर्ष के प्रथम विक्रमादित्य के प्रति उपेक्षा की, और अपनी मति को श्रम दिए बिना ही उस भ्रांति का विस्तार किया, उसी प्रकार कीथ की कल्पना को लेकर कालिदास के समय के सम्बन्ध में भी भ्रम-परम्परा को प्रचारित किया जा रहा है। समुद्रगुप्त की नवीन सुवर्ण-मुद्राओं ने (जो स्मिथ के मत-प्रतिपादन के पश्चात् मालव के बमनाला ग्राम से प्राप्त हुई हैं) जिनपर 'श्री विक्रमः' अंकित है, यह स्पष्ट प्रमाणित कर दिया है कि द्वितीय चन्द्रगुप्त को ही 'विक्रम' उपाधि नहीं थी, उसके पिता ने भी 'विक्रम' उपाधि लगाई थी, जो अवन्ती के प्रथम विक्रम की महत्ता की सूचक रही है। अवश्य ही प्रथम विक्रम के बाद समुद्रगुप्त और द्वितीय चन्द्रगुप्त के नाम के साथ 'विक्रम' शब्द अंकित तो हुआ है, और ये प्रमाण भी प्रत्यक्ष हैं। किन्तु द्वितीय चन्द्रगुप्त के साथ, या उसके काल में किसी प्रथम या द्वितीय कालिदास का कोई अस्तित्व नहीं मिलता, फिर भी चन्द्रगुप्त के काल में निरर्थक कालिदास को बिठलाने की खींचतान की जाती है। इनमें से अधिकांश लोग सफलतापूर्वक कीथ की कल्पना का पल्ला पकड़कर अपने पांडित्य प्रकाशन के लिए द्वितीय चन्द्रगुप्त को साथ रखकर भ्रम-विस्तार करने चले जाते हैं। कुछ लोग मौलिक चिन्तक भी हैं जिनका मत उनके अनुकूल है, पर वे तथ्य पर विचार कर के ही ऐसा करते हैं, यद्यपि उनके तथ्यों का दूसरा पहलू कालिदास को उन्हीं कारणों से प्रथम शति के पूर्व प्रमाणित करता है, ये तर्क भी कम सबल नहीं हैं। देश और विदेश के अनेक मननशील विद्वानों का बहुत बड़ा बहुमत है कि कालिदास ई० स० के पूर्व प्रथम शति में वर्तमान थे। इनमें अंतःसाक्ष्य, और बहिःसाक्ष्य भी पर्याप्त सहायक है, ऐसे कुछ विद्वानों के मौलिक तथ्यों पर हम पूर्व ही विचार प्रस्तुत कर चुके हैं। यहाँ हम और ऐसे विचार देने का प्रयास करते हैं, जिनसे महाकवि के प्रथम शति में उत्पन्न होने का औचित्य ज्ञात होता है।

डॉ० कीथ और उनके जैसे विचार रखनेवाले विद्वानों के तर्कों का सप्रमाण विश्लेषण के० एस० रामस्वामी ने अपनी अंगरेजी पुस्तक कालिदास में बड़ी योग्यता-

पूर्वक किया है। इसके पूर्व श्री० सीं० व्ही० वैद्य ने भी अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में बड़ी प्रामाणिकता के साथ कीथ के तर्कों का खण्डन किया है। श्री रामस्वामी ने कालिदास प्रयुक्त शब्दों द्वारा प्रथम शति ई० पू० होना प्रमाणित किया है। भास की प्राकृत और कालिदास प्रयुक्त प्राकृत के द्वारा यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह ई० स० के पश्चात् की नहीं है। श्री पुसालकर ने भास का समय ई० पू० ही कहा है (वी० सी० पेज ६६ भास स्टडी), रामस्वामी ने कहा है "मैंने उन असंख्य तर्कों पर विचार किया है जो कालिदास के समय के सम्बन्ध में है, और उनकी व्यर्थता एवं अप्रमाणिकता दिखलाई है, मेरा यह मत है कि कालिदास विक्रम के दरबार में थे, विक्रम की महती विजय के उपलक्ष में संवत् ई० स० ५६ वर्ष पूर्व चलाया था, यह विश्वसनीय है। श्री जोगलेकर के विचार से भी वे प्रथम शति ई० पू० ही रखे जा सकते हैं (*vide* Raghubans, Page XXVII, Intro.) । इसी प्रकार सी० एस० डे ('कालिदास विक्रमादित्य', पृष्ठ ८–५), के० एस० आर० शास्त्री (कालिदास पृष्ठ ६४) आदि विद्वानों ने भी प्रथम शति में होने की ही पुष्टि की है।

डॉ० सुविमलचन्द्र सरकार (पटना कॉलेज के इतिहासविभागाध्यक्ष) ने तिब्बती-साहित्य का ऐतिहासिक दृष्टि से व्यापक अध्ययन किया है। उन्होंने अपने अध्ययन का निष्कर्ष इस प्रकार प्रस्तुत किया है:—

'कालिदास राजनीतिक क्षेत्र में विदिशा के राजा भागभद्र शुंग, वाराणसी के राजा वीम कुमुल कदफिस, दक्षिण तथा अपरांत के राजा स्वाति सातवाहन, के समकालीन थे। उन्होंने राजा वीम की विदुषी कन्या वासंती से विवाह किया था।'

'साहित्य-क्षेत्र में वररुचि द्वितीय, शंकु, भाव वर्मा (सातवाहन राजकुमार), और ससवर्मा के समकालीन थे, ये सभी व्याकरण के विद्वान् थे।'

'यह प्रतीत होता है कि कालिदास नागार्जुन, सरहपाल, राहुल, भद्र (अपभ्रंश के कवि-दार्शनिक) के लगभग समकालीन (आसपास के) थे।'

इन बातों से पटना के श्री योगेन्द्र मिश्र बी० ए० ने यह परिणाम निकाला है कि—

'कालिदास ई० स० पूर्व की पहली शताब्दि के मध्य में हुए थे।'

'कदफिस राजाओं का समय ई० स० के बाद की प्रथम शति न होकर, पूर्व की पहली या दूसरी शताब्दि (लगभग १२० ई० पूर्व से २७ ई० पूर्व तक) है, जैसे कि उन राजाओं की मुद्रा एवं लिपियों से प्रकट होता है।'

'बीम कुसुल कदफिस या कदफिस द्वितीय (लगभग ६७ ई० पूर्व से २७ ई० पूर्व तक) ही कालिदास का आश्रयदाता शकारि विक्रम है, जिसने पहिले गंगा की घाटी में अपना प्रभुत्व जमाकर, पीछे शुंगों, अथवा काण्वों एवं पश्चिम के शकों को पराजित कर उज्जैन प्राप्त की थी।' *

राजा भागभद्र-शुंग का समय ई० पू० ११४ से ई० पू० ८२ तक था। शुंग विदिशा के शासक थे, और कालिदास का 'मालविकाग्निमित्र' नाटक भी विदिशा के अग्निमित्र पर है, मेघदूत में विदिशा को राजधानी कहा है।

तिब्बती ग्रंथों में नागार्जुन का विशेष महत्त्व है। ई० के पूर्व दूसरी-पहली शति में वह भारत का प्रसिद्ध व्यक्ति रहा है। तिब्बती ग्रंथों के अनुसार उसका समय ई० पू० १४४ से ई० पू० ८८ तक है, इसलिए शुंग भागभद्र का समकालीन होता है, (नागार्जुन का स्थान नागपुर के रामगिरि पर भी है, और मेघदूत की रचना का *आरंभ-स्थल भी नागपुर का रामगिरि है। महाकवि का समकालीन परिचित होना* आवश्यक है।)

मेघदूत में जिस दिङ्नाग का उल्लेख कालिदास ने किया है, उसमें गुप्तकालीन बौद्ध दिङ्नाग की अपेक्षा श्री मिश्र के मतानुसार डॉ० सरकार की सूचना से सयुक्तिक, और उचित प्रतीत होती है कि—कालिदास के दिङ्नागों का संकेत शायद इन ४ दिशा के नागों हो सकता है—

'दक्षिण के नागार्जुन, पूर्व में नागबोधि (जो नागार्जुन का शिष्य था और बंगाल का था), उत्तर में नागह्व (जो धर्मप्रचारार्थ उत्तर एवं चीन गया था), पश्चिम में नागसेन (जिसने पश्चिम से आक्रमण करनेवाले ग्रीक राजा मिनांडर को धर्मोपदेश दिया था) ये ४ दिशा के दिङ्नाग हो सकते हैं।'

तिब्बती-ग्रंथों में बीम कुसुल का नाम भीम शुकल मिलता है। डॉक्टर सरकार की सम्मति में वह कदफिस द्वितीय (बीम कुसुल) ही है। मंजुश्री मूलकल्प में इसे ही गंभीर यक्ष (कदफिस प्रथम का पुत्र) कहा गया है। तिब्बती पुस्तकों के अनुसार इसका अधिकार सागर (म० प्र०) से पांचाल तक था। राखाल दास के मतानुसार इसके सिक्के सारे उत्तर भारत में फैले हुए हैं। वह शैव था, क्योंकि उसके सिक्कों पर नंदी-शिव अंकित है (प्रिहिस्टोरिक एंशंट एण्ड हिन्दू इण्डिया)।

---

* किशोर सं० २००० चैत्र, पृ० १३।

यह बात प्रमाणित मानी जा चुकी है कि अश्वघोष का समय ईस्वी सन् के बाद का है, अतएव यह स्पष्ट है कि ई० सन् के पूर्व प्रथम शति में होने के कारण कालिदास अश्वघोष से पूर्ववर्ती ही है। अश्वघोष की रचना में कुछ स्थल ऐसे आए हैं जिनमें कालिदास की रचना का भाव-शब्द-साम्य मिलता है, किन्तु कालिदास जैसा महान्, मौलिक प्रतिभा और पांडित्य सम्पन्न कवि अश्वघोष का अनुकरण क्यों करने लगा? केवल शब्द और भाव साम्यों से ही यह निर्णय करना कठिन है कि किसने किसका अनुकरण किया है। यहाँ हम दोनों के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, उनसे यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि कालिदास की कल्पना से गौतम-बुद्ध को उच्च सिद्ध करने का प्रत्यक्ष प्रयास किया गया है, जो अनुकरण का साक्षी है। इस अनुकरण में महाकवि की मौलिक और स्वाभाविक कल्पना अश्वघोष की रचना में शिथिल और हास्यास्पद बन गई है।

कालिदास—

हरस्तु किंचित्परिलुप्तधैर्यः चंद्रोदयारंभइवाम्बुराशिः।
उमामुखेबिम्बफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि।

(कुमार सं० ३-६७)

जब कामदेव ने पार्वती को लक्ष्य कर शंकर पर बाणचढ़ाया, तब कुछ देर के लिए शंकर इस प्रकार चलितधैर्य हुए कि चंद्रोदय के समय सागर-जल चंचल हो उठता है। उन्होंने उमा के मुखचंद्र पर दृष्टिपात किया। कालिदास के श्लोक का यह आशय है।

अब अश्वघोष का वर्णन देखें—

शैलेन्द्र पुत्री प्रतियेन विद्धो देवोपी शंभुश्चलितोबभूव,
न चिन्तयत्येवतमेव बाणं किं स्यादचित्तो नशरःस एषः।

(बुद्धचरित १३-१६)

अर्थात् गौतम बुद्ध के समाधि लगाकर बैठने पर कामदेव ने उसपर भी शर-संधान किया, उसका कुछ भी परिणाम नहीं निकला, तब कामदेव मन में कहता है कि शैलसुता पर यही बाण चला था तब शंकर विचलित हो उठे थे, तो क्या यह वह बाण नहीं जो आज व्यर्थ बन रहा है?

इससे स्पष्ट है कि भगवान् शंकर से भी अपने नायक गौतमबुद्ध की समाधि को निश्चल सिद्ध करना अश्वघोष का हेतु है, और यह भी स्पष्ट

कि कालिदास की प्रथम कल्पना के उत्तर देने का प्रयास है। पर वह हास्यास्पद बन गया है। जो बाण क्षणभर शिव को विचलित कर सकता है, वह गौतम जैसे पुरुष को नहीं कर सका! अश्वघोष के श्लोक में कालिदास की सूझ, और सौष्ठव का भी अभाव है।

इसी प्रकार—

मुनिवन तरुच्छायां देव्यातया सह शिश्रिये।
गलित वयसा मीक्ष्वाकूणामिदंहि कुलव्रतम्॥ (रघु. ३-७०)

रघुराजा अपनी वृद्धावस्था में रानी सहित तपोवन में जाकर रहने लगा, क्योंकि गलित-वय होने पर इक्ष्वाकु वंश के राजाओं की यह कुल-परम्परा ही (धर्म) थी।

किंतु अश्वघोष कहता है—

नाश्चर्य जीर्णवयसो यद्जग्मु: पार्थिवा वनम्।
अपत्येभ्य: श्रियंदत्वा भुक्त्वोच्छिष्ट मिवस्रजम्॥ (बुद्ध. १२-७)

अर्थात् वृद्धावस्था होने पर पुत्र को राज्य देकर वन में राजा जाता है, इसमें कौनसा आश्चर्य? अपने को मिली हुई माला (हार) उपभोग कर लेने पर वृद्ध जन बच्चों को दे ही देते हैं, इसमें क्या त्याग हुआ?

इसमें भी स्पष्ट दिखाई देता है कि कालिदास के काव्य के समक्ष रहते हुए यह उसीको उत्तर देने का प्रयास है; और अपने नायक को श्रेष्ठ बतलाने का यत्न किया गया है।

ठीक इसी तरह कालिदास के—

'आसमुद्र क्षितीशानाम्' (रघु. १-५)

सागर तक की पृथ्वी का प्रभुत्व प्राप्त करने की बात का अश्वघोष ने—

'समुद्रवस्त्रामपिगामवाप्य पारंजिगीषत्रि महार्णवस्य (बुद्ध. ११-१२)

यह कहकर उत्तर देने का प्रयत्न किया है कि समुद्र-वसना पृथ्वी प्राप्त हो जाने से संतोष न कर योगी को उस महार्णव के पार जाने की ईर्षा मन में रहती है।

यह कालिदास की मौलिक कल्पना के उत्तर देने का प्रयास है, और इससे प्रकट हो जाता है कि अश्वघोष कालिदास के बाद उत्पन्न हुआ, और कालिदास ई० स० पूर्व यति का है। अपने से पहिले की किसी वर्णन विशेषता को हलकी बतलाना। और अपनी वर्ण्य वस्तु को उससे ऊँची बतलाने का प्रयास जिस प्रकार अश्वघोष ने एक नहीं अनेक बार उसी भाव को लेकर किया है।

यही साक्षी देता है कि अश्वघोष कालिदास के बाद का है। दूसरे अश्वघोष की अधिकांश उपमाएँ पौराणिक हैं। और पश्चात्कालीन हैं, जबकि कालिदास की अधिकांश उपमाएँ वैदिक हैं, जैसे प्रणवच्छन्दसामिव, पत्निसुदक्षिजेत्यासी दध्वरस्तेन दक्षिणा, अन्वासितमरुन्धत्या स्वाहयेव हविर्भुजम्; श्रुते रिवार्थं स्मृति रन्वगच्छन् इत्यादि। इनसे भी कालिदास अश्वघोष से पूर्वकालीन ही सिद्ध होता है।

एक आश्चर्य की बात है कि कालिदास की किसी भी रचना में शकों का कहीं भी उल्लेख नहीं है, जबकि यवन और हूणों का अवश्य है। यह बात स्पष्ट है कि अग्निमित्र के पुत्र ने सिन्धुतटवर्ति यवनों से संघर्ष किया था, और अश्वमेध के घोड़े को विजय द्वारा वापस प्राप्त किया था। रघुवंश में 'तत्र हूणा वरोधा नाम्' आदि उल्लेख है। इससे यह विदित होता है कि कालिदास शकों के आक्रमण के पूर्व शुंग काल में था। यदि द्वितीय चंद्रगुप्त या दशपुर के यशोधर्मन् के काल में हुआ होता तो अवश्य उसे शकों के आक्रमण का पता होता, और कहीं उल्लेख तो किया ही होता। शकों का आक्रमण एक शति के बाद हुआ है, कवि इससे पूर्ववर्ति होने के कारण ही तटस्थ है, चन्द्रगुप्त का वह समकालीन होता तो शकों का उल्लेख अवश्य करता, यवनों का नहीं। इसी प्रकार शुंगों के काल के सिवा विदिशा राजधानी कहीं कभी नहीं बनी, जो भी महत्त्व अशोक के यौवराज्य काल में विदिशा को मिला (यद्यपि राजधानी पाटलिपुत्र में ही बनी रही) उसके बाद बृहद्रथ की हत्या करके पुष्यमित्र ने जब अपने पुत्र अग्निमित्र को विदिशा भेजा, उसी समय से विदिशा को स्वतन्त्र महत्त्व मिलता गया, और वह राजधानी बनी। इसके पूर्व या इसके पश्चात् भी कभी विदिशा को राजधानी बनने का गौरव नहीं मिला है, इस कारण कालिदास ने 'तेषांदिक्षुप्रथित विदिशा लक्षणां राजधानीम्'—सभी दिशाओं में प्रसिद्ध राजधानी कहा है। कालिदास जानता था कि उज्जैन में प्रद्योत जैसा प्रतापी वीर राजा हुआ, उसकी पुत्री वासवदत्ता का उदयन द्वारा अपहरण हुआ है। इसलिये उज्जैन की महत्ता के साथ, वहां ग्रामवृद्धों द्वारा यह कथा रसपूर्वक कही जाती रही है। क्योंकि शुंगों के थोड़े समय पूर्व की ही थी। फिर भी वह अवंती के वैभव के महत्व का वर्णन राजधानी के रूप में नहीं करता, राजधानी शुंगों की विदिशा को ही बतलाता है। चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल में उत्पन्न होनेवाले कालिदास को विदिशा को राजधानी का गौरव देने की आवश्यकता नहीं होती, वह पटना का महत्त्व प्रतिपादित करता है, क्योंकि चन्द्रगुप्त कभी उज्जैन को राजधानी नहीं बना सका था। न वह यहाँ रहा ही। तब कालिदास के उस समकालीन या मित्र होने की संगति ही कैसे हो? कालिदास का पटना-प्रेम तो कहीं प्रतीत नहीं होता, इसके विपरीत विदिशा अवंती दशपुर के वर्णन में उसकी प्रतिभा प्रौढ़तापूर्वक सौन्दर्य सृजन करती है। अवंती के

विक्रम, कालिदास को द्वितीय चन्द्रगुप्त के साथ जो लोग पटना पहुँचाने का प्रयास करते हैं, वे अवंती के विक्रम, और मालव के ममत्व रखनेवाले कालिदास के इतिहास की सहज उपेक्षा करते हैं।

क्षेमेन्द्र ने जिस कालिदास को अपना दूत बनाकर कुन्तलेश्वर के निकट भेजने की चर्चा की है, उसकी रचना 'कुन्तलेश्वरदौत्यम्' महाकविकालिदास की काव्य-त्रयी की तरह नतो प्रसिद्ध बन सकी, न वह आज जीवित दिखलाई पड़ती है। उसका काव्यत्रयी के कर्त्ता से कोई सम्बन्ध नहीं है।

दूसरी बात–कालिदास ने अपने रघुवंश में पांड्यों का उल्लेख किया है। इनका उल्लेख अशोक के शिलालेख में भी मिलता है। ईसा पूर्व दूसरी शति में दक्षिण में पांड्यों का प्रभाव रहा है, इसलिये स्वाभाविक है कि शुंगकालीन कालिदास उनका वर्णन करे, किंतु द्वितीय चन्द्रगुप्त के पिता समुद्रगुप्त के थोड़े समय पूर्व ही पाँड्यों को पल्लवों ने दबा दिया था, समुद्रगुप्त को पल्लवों से संघर्ष करना पड़ा था। चन्द्रगुप्त के समय तो ठीक उसके पिता को भी पांड्यों से सीधा सम्बन्ध नहीं आया, तब कालिदास को पांड्यों की चर्चा करने का कोई कारण नहीं होना यह बतलाता है कि वह पांड्य-काल के आसपास के शुंग शासन में ही रहा है। चन्द्रगुप्त के समय की घटना में उसे पल्लवों का स्मरण करना पड़ता, पर पल्लवों के उदय के पूर्वकाल में कवि था, उसका गुप्त राजकुल से सम्बन्ध नहीं। पांड्यों का विस्तृत राज्य ईसापूर्व प्रथम शति में ही था, यही कारण है कि उस समय की घटना उसके वर्णन में हुई है। सी० व्ही० वैद्य, और विधुशेखर भट्टाचार्य का भी यही अभिमत है कि उसे गुप्तकाल में खींचना व्यर्थ है। कालिदास इतना असमर्थ कवि नहीं था कि रघुवंश में उसे छुपे (श्लिष्ट) शब्दों में गुप्त वंश का वर्णन करना पड़े। जबकि स्थल-प्रकृति, विषय का वर्णन वह सर्वत्र विस्तारपूर्वक स्पष्ट और वास्तविक करता है। फिर मालव का कवि रघुवंश, जो इक्ष्वाकु वंश कथा, का वर्णन करता है, जो मालव ही थे, सिकन्दर से संघर्ष करनेवाले मालवों ने भी यह स्वीकार किया है, और नादसा के स्तम्भलेख से यह प्रमाणित होता है, * मगध के गुप्तों से सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता। ज० स० करंदीकरजी जैसे विचारक विद्वान् का तो यह कहना है—'विक्रमोर्वशी' नाटक में नायक पुरूरवा रहते हुए भी उसका नाम 'विक्रमोर्वशी' रखने में उसका हेतु विक्रम से है और खोई हुई उर्वी (पृथ्वी–राज्यलक्ष्मी) को पुनः विक्रम द्वारा प्राप्त करने की घटना ही वर्णित की है।

---

* इक्ष्वाकुप्रथित राजर्षिवंशे।

इसी प्रकार 'कुन्तलेश्वर दौत्य' पर भी विचार करें तो एक बात नवीन मिलती है। जैसा कि कहा जाता है यह पुस्तक कालिदास रचित है, और सेतुबन्ध भी। सेतुबन्ध की रचना को उसका टीकाकार रामदास कालिदास की रचना ही कहता है।

(धीराणां काव्यचर्चा चतुरिम विषये विक्रमादित्य वाचा।
यंचक्रे कालिदासः कविकुमुद विधुः सेतुनामप्रबन्धम्,
तद् व्याख्या सौष्ठेवार्थ परिषदि कुरुते रामदासः सएव,
ग्रंथ जल्लालदींद्र क्षितिपति वचसा रामसेतुप्रदीपम्।)

'इस ग्रंथ की रचना में प्रवरसेन को कालिदास ने सहायता दी थी। प्रवरसेन नाम के ४ राजा हो गए हैं। दो काश्मीर में हुए थे, और वाकाटक वंश में। राजतरंगिणी के अनुसार प्रथम प्रवरसेन ५८-८८ ई० में हुआ, और दूसरा दूसरी ईसवी में (इंडियन एंटीक्वेरी, पु. १० पृ. २४५)।

और वाकाटक वंश के प्रवरसेन ४थी-५वीं शति में हुए हैं। परन्तु समुद्रगुप्त के प्रथम सारे देश में और दक्षिण के विशेष भू-भाग पर प्रवरसेन का शासन था (हिस्ट्री ऑफ इंडिया—७९ पृ.) तब यह सेतुबन्ध किस प्रवरसेन का लिखा हुआ है? कुन्तलेश्वर दौत्य के अनुसार प्रवरसेन कुन्तल-देश (गोदावरीतटवर्ति हैदराबाद के वायव्य में) इनमें निश्चय ही एक प्रवरसेन प्रथम विक्रम के लगभग रहता है, और कालिदास का काल भी स्वाभाविक इसी समय होता है।

कुन्तलेश्वर ने मालवे पर आक्रमण किया था, अप्पय्य दीक्षित ने कुवलयानंद में एक श्लोक उद्धृत किया है। उसमें समुद्र और नर्मदा का संवाद है, उससे यह विदित होता है कि कुन्तलेश्वर के कारण मालवीयों के कज्जल मिले हुए आँसुओं से नर्मदा का जल कालिन्दी की तरह नीला पड़ गया था।

(कालिन्दी ब्रूहि कुम्भोद्भव! जलधि इहं नाम गृह्णासिकस्मात! च्छत्रोमें नर्मदा हं त्वमयि वदसि मे नामकेस्यात्सपत्न्याः। मालिन्यं तर्हि कस्मादनुभवसि मिलत्कज्जलै र्मालवीनां। नेत्राम्भोभिः कियासां समजनि कुपितः कुन्तल क्षोणिपालः।)*

किन्तु यह कुन्तलेश्वर-प्रवरसेन कौनसा था, यह प्रश्न है? यदि यह प्रथम है तब तो विक्रम—प्रथम से सुसंगत ही है। अब तक यह निश्चित नहीं हो सका है कि सेतुबन्ध का लेखक कौनसा था?

---

*'किशोर' १९४४.

कालिदास के समय लेखनकला का विकास अधिक नहीं हुआ था। मालूम होता है उस समय तक लकड़ी के पटियों पर और भोजपत्रों पर लिखने की प्रथा प्रचलित थी। वाङ्मय का निर्माण तो विशेष रूप से होने लगा था किन्तु अभी भोजपत्रों पर काली स्याही से लिखने की प्रथा रही है, 'न्यस्ता क्षराभूर्जत्वचः' यह कुमारसंभव, और विक्रमोर्वशीय में 'भूर्जपत्रगतोऽक्षर विन्यासः' का कालिदास ने उल्लेख किया है। इनसे भी यही विदित होता है कि वह गुप्तकाल से बहुत समय पूर्व हुआ है, गुप्त-युग में लिखने के साधनों का पर्याप्त विकास हो चुका था। वैसे भारत में लिखने का प्रचार ई० स० पूर्व ५वीं शति के लगभग हो गया था, परन्तु भारत पर आक्रमण करनेवाले सिकन्दर के सेनापतियों में से निआर्कस् नामक एक साथी था, जो पंजाब में रहा था, और उसने चढ़ाई का वर्णन लिखा है। उसका कहना है कि यहाँ के लोग रूई को कूटकर लिखने के लिए कागज बनाते थे। नए वर्ष का (पंचांग) भावीफल सुनाया जाता था, (ई० मॅ० पृ० ९१, इण्डिया ऑफ मेगेस्थनीज) तथा जन्म-पत्र बनाने के लिए जन्म-समय लिखा जाता था (इं० मॅ० पृ० १२६)। यह ई० स० पूर्व ४थी शति का प्रमाण है।

इन प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि कालिदास ई० स० पूर्व की प्रथम शताब्दि के समय में ही था. उसे ईसवी सन् के पश्चात्-काल में लाना कठिन है। इन साक्ष्यों के अतिरिक्त स्मृति-विधानों के अनुसार भी ऐसे कई विधान हैं जिनसे कालिदास को पश्चात्कालीन स्मृतियों के काल में किसी प्रकार भी जुड़ाया नहीं जा सकता। व्याकरण के प्रयोगों से भी इसी मत को पुष्टि मिलती है। अन्य अनेक वैदिक पद्धतियों यज्ञ-याग-आश्रम की विशेषताओं से जो ब्राह्मण-काल में प्रचलित थी और जिन्हें पुनः ब्राह्मण-शासक शुंगों ने ही प्रचलित कर वैदिक धर्म का पुनरुज्जीवन किया था वे कालिदास के काव्य-नाटकों में अनेक स्थलों पर सादर प्रकाश में आई हैं। शुंगवंश के भागभद्र शासक के समय भागवत-धर्म का प्रभाव बढ़ने लगा था, जिसका प्रमाण हेलियोडोरस का वह गरुडस्तम्भ है, जो बेसनगर में इस ग्रीक राजदूत को भागवत-धर्म में दीक्षित करने का प्रमाण अंकित किए हुए अब तक भी खड़ा है। कालिदास उसके पूर्व में हुआ है, क्योंकि वह यद्यपि त्रिमूर्ति का समादर अवश्य करता है, पर उसकी शिवनिष्ठा ही विशेष रूप से रचनाओं में व्याप्त है, जिसे परम भागवत द्वितीय चन्द्रगुप्त के काल में सरलता से नहीं समाविष्ट किया जा सकेगा। शुंगों की मुद्राएँ, जिस प्रकार कालिदास को उनके काल में रखने में सहायक होती हैं, उतनी गुप्तों की नहीं। और अग्निमित्र का जैसा वर्णन कवि ने अपने नाटक में किया है, यद्यपि अग्निमित्र के एक ऐतिहासिक शासक होते हुए भी वह वर्णन किसी इतिहास-कथा-गाथा में उपलब्ध नहीं है, यह

सबसे बड़ा प्रमाण कवि के तत्कालीन घटना के मर्मज्ञ या प्रत्यक्ष-दर्शी होने का प्रबल प्रमाण प्रस्तुत करता है। मालविकाग्निमित्र का भरतवाक्य—

" आशास्यभीति विगमप्रभृति प्रजानाम्,
सम्पत्स्यते नखलु गोप्तरि नाग्निमित्रे। "

यह स्पष्ट बतलाता है कि कवि, और राजा समकाल में विद्यमान थे।

शाकुंतल के निर्माता कवि ने कण्वाश्रम के दो ऋषिकुमारों द्वारा राजा को कहलाया है कि "अत्रभवतः कण्वस्य महर्षे रसान्निध्याद्रक्षांसिनः इष्टिर्विघ्नमुत्पादयन्ति" इसमें—'कण्व के आश्रम से बाहर रहने के कारण उनके 'इष्टि' (यज्ञ) में राक्षस विघ्न उत्पन्न करते हैं (द्वितीय अंक)।

और तीसरे अंक में—'सायन्तने सवन कर्मणि सम्प्रवृत्ते'

तथा चौथे अंक में—"अद्यस राजापिरिष्टि परिसमाप्य"

इस प्रकार 'इष्टि' और 'सवन' शब्दों का प्रयोग किया है, इनमें 'इष्टि' का प्रयोग वैदिक, और मीमांसक लोग दर्शपूर्णमासेष्टि, सौर्येष्टि, वैश्वानरेष्टि के रूप में करते हैं, और 'सवन' का प्रयोग सोमलता द्वारा साध्य सोमयाग के लिए किया जाता है। इस प्रकार इष्टि, और सवन दोनों स्वतंत्र कर्म है। किन्तु यहाँ 'सवन' के साथ ही 'इष्टि' भी कही गई है, यह स्पष्ट ही सोमयाग के लिए है जिसके विभिन्न इष्टियाँ अंगभूत रखी है। ज्योतिष्टोम में पांच दिन इष्टि-प्रयोग होकर सोमलता याग सम्पन्न होता है, तब अत्रभृतेष्टि होती है। *कालिदास का यह विधान गुप्तकाल के लिए कदापि अनुकूल नहीं बैठता, यह शुंगकाल अश्वमेघ विधान-काल के लिए स्वाभाविक होता है। यह ब्राह्मण वर्चस्व की प्रवृत्तियाँ रही हैं और वह भी वैदिक-प्रधान ही, इसलिए भी यह प्रयोग गुप्तकाल से सुसंगत नहीं। कालिदास यह उसी ब्राह्मण-प्रभाव काल की प्रचलित प्रवृत्ति, और प्रभाव की ही सूचना प्रकट करता है।

इसी प्रकार कालिदास के मेघदूत की रचना का मूल स्रोत भी वैदिक और वाल्मीकि रामायण है।

रघुवंश, और शाकुंतल की कथा, एवं वंशावली की किसी पुराण से संगति नहीं मिलती। कवि के पश्चात्कालीन पुराणों ने अवश्य ही उनके अनुकरण में वंशक्रम दिया है, किन्तु महाभारत वाल्मीकि में यह क्रम नहीं है। यदि कवि पर पौराणिक उन

---

* महामहो० चिन्त स्वामी शास्त्री।

वंशावलियों के अनुकरण करने का आरोप लगाया जाए जो कवि के वर्णन के अनुरूप है, तो कवि को ९वीं शति के बाद में उत्पन्न बतलाना होगा, जो स्वयं उपहास का विषय होगा। रघुवंश को ही लीजिए इसके वर्णित सभी राजाओं की जो विस्तृत कथा कालिदास ने बतलाई है, वह आदिकवि की रामायण से लेकर किसी भी पुराण में नहीं है। वह कहाँ से प्राप्त हुई, पता नहीं। अवश्य ही पुराणों से पूर्वकाल में ऐसे साधन उपलब्ध होंगे, जिनको आधार बनाकर कवि ने पात्रों का विस्तार सहित वर्णन किया है।

मेघदूत की कल्पना के लिए स्वयं कवि के प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ का यह अभिमत है कि सीता के निकट हनुमान् को संदेश लेकर पहुँचाने की बात लेकर कवि ने मेघ द्वारा यह संदेशवाहक का कार्य किया है। यह ठीक है कि मेघदूत के थोड़े नहीं लगभग ५०-१०० श्लोकों पर रामायण की कल्पना का बहुत स्पष्ट प्रभाव है। कुशलता और चमत्कार-प्रदर्शन के साथ अनुकरण भी है, जैसे—

मेघदूत — स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे (श्लोक ५८)

वा. रामायण—भिन्नाञ्जनचयाकारमंभोदर मिवेदितम् कि० कां (२७-१४)

मेघदूत — क्षीणः क्षीणः परिलघुपयः स्रोतसां चोप भुज्य (श्लोक १३)
सेविष्यन्ते नयन सुभगंखेभवन्तं बलाकाः (श्लोक ९)

वा० रामायण—बलाकिनो वारिधरा नदन्तः। महत्सु शृंगेषु महीधराणां विश्रम्य विश्रम्य पुनः प्रयान्त (८-२२)
मालयेव बलाकानां (१२-४१)
संमोदिताभाति बलाक पंक्तिः स्रग्वेवमाला रुचिराम्बरस्य (२८-२३)
हृष्टा बलाका घनमभ्युपैति (२८।२५)

मेघदूत — बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिर्दत्त नृत्योपहारः (३२)

वा० रामायण—जाता वनान्ता शिखिसुप्रवृत्ताः (२८।२६)

मेघदूत — मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथा वृत्ति चेतः कण्ठाश्लेष प्रणयिनीजने किं पुनर्दूर संस्थे। (३)

वा० रामायण—वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति ध्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्वसंति, नद्यो घना मत्तगजा वनान्ताः प्रियाविहीनाः शिखिनः प्लवंगमा। (२८-२७) *

---

* भर्तृहरि शृंगारशतक श्लोक ९१ भी इसी प्रकार है।

मेघदूत — परिणतफलं श्यामजम्बू वनान्ताः (२३)

रामा० — जम्बूद्रुमाणां प्रविभान्ति शाखा निपीयमाना इव ब्रट पदौघैः (२८।१६)

मेघ — तस्याः किंचित्कर धृतमिव प्राप्त वानीर शाखम् ।
हृत्वानीलं सलिल वसनं मुक्तरोधे नितम्बम् ।
प्रस्थानंते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावी ।
ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः ।
(४१ तथा ४०,२८-७८)

वा० रामायण—नीरजैः शोभिता भांति नानारुपै स्ततस्ततः
वसनाभरणोपेता प्रमदेवाभ्यलं कृताः । (२०–१९)
दर्शयन्ति शरन्नद्यः पुलिनानि शनैः शनैः ।
नव संगम सव्रीडा जघनानीव योषितः ।
(३०-५८ तथा ३०-५४,३०-४९)

मेघदूत — यावः काले वहृति सलिलोद्गार मुच्चैर्विमाना मुक्ताजाल ग्रथित-
मलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम् ।

वा० रामायण—मुक्ता कलाप प्रतिमाः पतन्तो (६३) (२८–५०)
सुरता मर्द विच्छिन्नाः स्वर्ग स्त्रीहार मौक्तिकाः ।
पतन्तिचातुला दिक्षु तोयधाराः समन्ततः । (२८–५१)

मेघदूत — आलिङ्गन्ते गुणवतिमया तुषाराद्रिवाताः पूर्वंस्पृष्टं
यदिकिलभवेदङ्गयेभिस्तवेति (१०९)

वा० रामायण—वाहिवात यतः कान्ता तांस्पृष्ट्वा मामपि स्पृश ।
त्वयिमे गात्र संस्पर्शश्चंद्रे द्रष्टिसमागमः । (५–६ युद्ध.)

इस प्रकार वाल्मीकि रामायण, और मेघदूत के १०० से ऊपर स्थल है, जहां भावसाम्य स्पष्ट प्रतीत होता है। इसी प्रकार श्रीमद्भागवत में भी (१० स्कंध, ९० अ० व श्लोक २०) आश्चर्यजनक संगति है—मेघदूत की तरह ही कृष्ण की स्त्रियों की विरह-भावना और मेघ के प्रति कहे हुए उद्गार कितने समान हैं!

मेघ श्रीमंस्त्वमसिदयितो यादवेन्द्रस्यनूनं श्रीवत्सांकं वयमिव भवांध्यायति प्रेमबद्धः अत्युत्कण्ठा शवल हृदयो ऽस्मूद्विधो वाष्पधाराः ।

स्मृत्वा स्मृत्वा विसृजसि मुहु र्दुःखदस्तत्प्रसंगः । *

---

* सुश्लोक मेघ

और योगवासिष्ठ के उत्तरार्ध निर्वाण प्रकरण के सर्ग १५, श्लोक १६ में जो साम्य है, वह भी अत्यंत आश्चर्योत्पादक है। *

—एतच्छृगं हरति पवनः किं स्विदित्युन्मुखीभिः ।
द्रष्टोत्साहश्चकित चकितं मुग्ध सिद्धाङ्गनाभिः ॥
प्रालेयाद्रेः प्रतितटवनं प्रोत्पतसभ्रमूर्ध्व ।
वज्रस्तंभो गगन गुतलोत्तोलनादेव भूमेः ॥

इस श्लोक से तो प्रत्यक्ष ज्ञात होता है कि यह कालिदास की रचना ही जैसी की तैसी ग्रहण करली है। पता नहीं योगवासिष्ठकार कब हुए, परन्तु वे कालिदास के बाद हुए हैं, यह इससे स्पष्ट है। योगवासिष्ठ में और भी ऐसे श्लोक आए हैं।

डॉक्टर मंगलदेव शास्त्री ने इस काव्य की प्रेरणा का स्रोत वैदिक साहित्य से भी खोज निकाला है, वृहद्देवता के पंचम अध्याय में एक श्यावाश्व का आख्यान है। उसने मरुद्‌गणों से मंत्रदर्शन करने की शक्ति प्राप्त कर रात्रि को दूत बनाकर राजा दार्भ्यरथवीति की राजकुमारी के पास संदेश लेकर भेजा था, श्यावाश्व दार्भ्य के यज्ञ-प्रसंग पर गया था, और वहाँ राजकन्या को देखकर मोहित हो गया था, किंतु मंत्रद्रष्टा न होने से राजकुमारी प्राप्त न कर पाया था। जब मंत्रदर्शन की शक्ति मिल गई तब उसने रात्रि के द्वारा संदेश कहलाया, उसने रात्रि की स्तुति में (ऋग्वेद मं० ५,६१ सू०) इसका उल्लेख वृहद्देवता (अ० ५) में ७४–७५ श्लोकों में किया गया है।

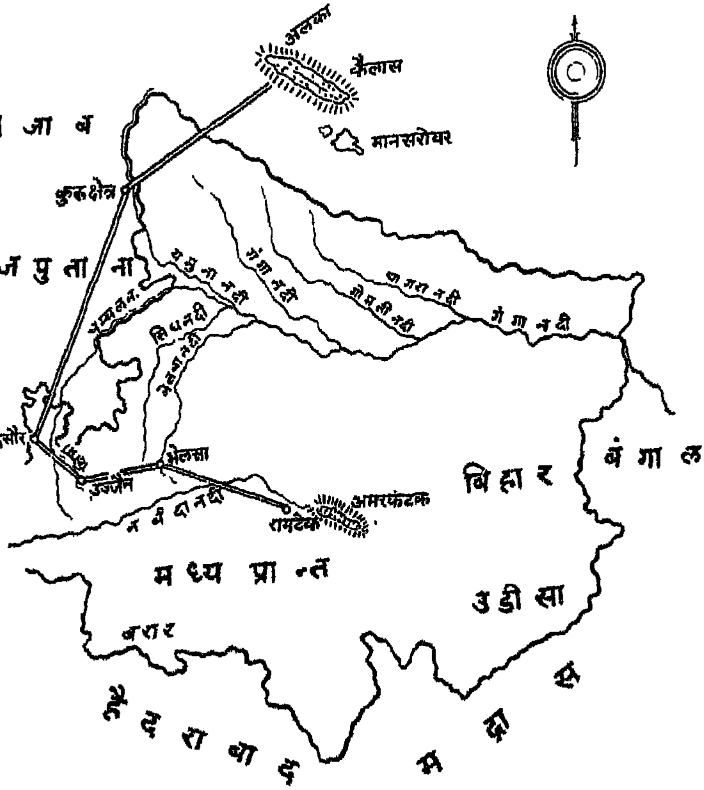
वस्तुतः जिस प्रकार निश्चेतन पदार्थ को दूत बनाने की कल्पना श्यावाश्व के रात्रि-दूत के रूप में वैदिक साहित्य में प्रथम मिलती है, उसी तरह मेघ के दूत बनाने की कल्पना कालिदास ने की है। उससे भी उसी विचार की पुष्टि होती है कि वह वैदिक धर्म प्रभाव-काल में उत्पन्न हुआ है। ऋग्वेद की यह दूत-कल्पना और वाल्मीकि के हनुमान् द्वारा प्रेषित किए गए सीता के लिए संदेश की सूचना से प्रेरित हुए होंगे और वाल्मीकि की विभिन्न कल्पनाओं से उसके इस संदेश-काव्य का सुन्दर शृंगार हुआ होगा, कवि का वर्णन उसकी मौलिकता, और प्रतिभा तो वास्तव में अपनी ही अद्भुत है।

इसका दूसरा समर्थन विक्रमोर्वशीय नाटक से होता है। यह पुरूरवा उर्वशी का कथा-भाग ऋग्वेद के दशम मण्डल के पूरे ९५ वें सूक्त का है, (प्रथम मण्डल के ३१ सूक्त मंत्र ४ तथा १७ मंत्र में भी वर्णन है, अवश्य यह पुराणों में कुछ जगह आई है पर उनमें विभिन्नताएँ हैं, कवि का आधार वैदिक है। स्पष्ट ही पुराणों के पूर्व काल का है। किंतु इसके नामकरण में पुरूरवा को छोड़कर 'विक्रम' शब्द का जुड़ाना और 'अनुत्सेकः खलु विक्रमालंकारः' का प्रयोग कवि के विक्रम-स्नेह-संकेत का ही प्रमाण है। इन सबको प्रत्यक्ष देखते हुए महाकवि को ई० पूर्व की प्रथम शति के बाद में उत्पन्न बतलाना निरर्थक ही है।

---

* डॉ० आत्रेय

कालिदास कथित वक्रमार्ग



महाकवि के काव्य, नाटक

साहित्य के आरंभिक काल से चरमोत्कर्ष काल पर्यन्त महाकवि कालिदास के काव्य-नाटकों ने समान रूप से समादर प्राप्त किया है। ये कभी पुरातन नहीं बन सके, सर्वकाल में इनकी नवीनता बनी रही है। प्रगतिशील पश्चिम देश में प्रवास करने के बाद भी ये काव्य-नाटक उनमें अभिनव आकर्षण का केन्द्र बने हुए हैं। चीन, और रूस जैसे राष्ट्रों में भी कालिदास की महत्ता को माना गया है। उनकी अमर कृतियों का रसास्वादन सामाजिक, वैचारिक क्रांति के रहते हुए भी बराबर किया जा रहा है। इन काव्य-नाटकों में मानव-मनोभावों का जिस सूक्ष्मता, और मार्मिकता से प्रकाशन हुआ है, और प्रकृति के साथ जो तादात्म्य दिखलाया है, वह अन्य किसी काव्य में भी दुर्लभ है। मानव से लेकर किसी जीवधारी और जड़-चैतन्य तक में जो आत्मीयता इनमें वास्तविक रूप में प्रकट हुई है, वह अद्भुत ही है। भाषा की सरलता के साथ सरसता और भावों की कोमलता भी हृदय को सीधा स्पर्श करनेवाली है। इसी कारण महाकवि की कविता, और नाट्य-वर्णन सौंदर्य को साकार करने में समर्थ हो सका है, और विश्व को आकर्षित कर सका है। ऐसी स्वाभाविक वर्णन-शैली कहीं दिखाई नहीं पड़ती। भाषा, शैली, रचना-सौष्ठव, प्रवाह, प्रसाद, और मौलिकता की दृष्टि से महाकवि का रघुवंश-महाकाव्य सर्वोत्तम है। उसमें उसकी कला का चरम विकास हुआ है। मेघदूत, और कुमारसंभव भी अपनी स्वतंत्र विशेषता लिए हुए हैं, इसी कारण मेघदूत का समादर दुनियाँ की समस्त भाषा, और साहित्य में हुआ है। मेघदूत की अपनी मौलिकता है, मादकता है, उसके अनुकरण में अनेक दूतकाव्य निर्मित हुए, पर जिस प्रकार अश्व-विद्यानिपुण नल की कला का अनुकरण करने वाला समीर, आजतक नल की तरह अश्व को गोल-वर्तुल में घुमाने की तरह स्वयं घूमकर नकल करता आ रहा है, पर यशस्वी न होकर सलज्ज आकाश में धूल के बवंडर में अपने को छिपाकर विलीन हो जाता है, उसी तरह मेघदूत के अनुकरण का हाल होता रहा है। पर यह प्रवृत्ति अनेक शतियों से कवि-मानस को निरंतर प्रेरित करती चली आरही है। परंतु मेघदूत की अपनी विशेषता यथापूर्व बनी हुई है।

कवि का ऋतुसंहार छोटा किन्तु मनोहारी काव्य है। कविता-क्षेत्र में ऋतु-वर्णन के व्याज से युवक शृंगार-रस-सिक्त कवि की यह प्रथम भेंट है। षड्ऋतुओं का छः भागों में रसमय वर्णन है। ग्रीष्म से इसका आरंभ किया गया है। प्रत्येक

श्लोक सरस, और स्निग्ध है। शृंगार के अलंकार से ये झंकृत हो उठते हैं। रस, और माधुर्य से ओतप्रोत हैं। महाकवि के काव्य-विकास की प्रस्तावना की तरह साहित्य जग में ये अवतीर्ण हुए हैं। प्राकृतिक वर्णन की मनोहारी-छटा से अभिभूत बन, ये स्वयं हरित-पल्लवित, सुरभित उद्यान से बन गए हैं। पाठक उद्यान-विहार का आनंद अनुभव कर सकता है। ऋतुओं का ऐसा सरल-सुन्दर, सरस वर्णन काव्य की दृष्टि से समस्त काव्य-सृष्टि में अनोखा है।

मेघदूत के माधुर्य के विषय में कहना ही क्या है? यह काव्य-साहित्य का दिग्विजयी सम्राट् है। दो (पूर्व-उत्तर) खण्डों में विभक्त यह छोटा-सा, किन्तु महान् मनोहारी काव्य विश्व के मनीषियों को आज तक मुग्ध करता चला आ रहा है, इसका रस-स्रोत अजस्र वाहित हो रहा है। कौनसा देश, साहित्य. और काव्य है, जिसने इसकी माधुरी से मुग्ध हो अनुकरण या अनुवाद कर गर्व न माना हो। कविता-कामिनी का यह कण्ठहार बन गया है। अनेक विद्वानों द्वारा अनूदित होकर भी यह अपनी स्वतंत्र मौलिकता लिए हुए है, इसे पान करके भी परितृप्ति नहीं होती। 'और-और मत पूछ, दिए जा' की भावना बनी रहती है। यद्यपि इसमें यक्ष-विरह की कथा बहुत सीधी-सादी है, किन्तु कवि की प्रतिभा ने उसे कलापूर्ण, और स्वाभाविक ढंग से नगीने की तरह कविता में जड़ दिया है। कवि ने इसमें वर्षा के मानसून का पथ-प्रदर्शन किया है, इसीलिए दक्षिण में वर्षा के आरंभिक मेघ को आषाढ़ में उमड़ता दिखलाकर उत्तर में हिमालय तक पहुँचाया है। किन्तु विरहिणी प्रियतमा को संदेश पहुँचाने के लिए यक्ष द्वारा मेघ को दूत बनाकर कवि ने इस रचना में जो सौंदर्य-सृजन किया है, उसने समस्त मानव-मनोभावों को उस रसमयी यात्रा में अपना साथी बना लिया है। कवि की कला और प्रतिभा की प्रांजलता से यह यात्रा अत्यन्त स्वाभाविक, सजीव, हृदयहारी बन गई है। कवि की यह अमर रचना है। इसकी मौलिक मनोहारिता के समक्ष अनुवाद, और अनुकरण की परम्परा ने पराजय स्वीकार करली है। कोमल, और कांत भावनाओं के इस अमर-शिल्पी का यह 'मेघदूत' प्रत्येक युग के मानव का 'मेघदूत' बनकर कविता का मापदण्ड बन गया है, इसमें रसिक हृदय का स्पन्दन है।

कुमारसंभव-काव्य हिमालय के भव्य उदात्त वर्णन से आरंभ होता है। पर्वत-सुता उमा के सौंदर्य, यौवन उस हिम-सुषमा से निखर उठता है। पार्वती की तपश्चर्या, शिव द्वारा परीक्षण, प्रणय, विवाह, और शृंगार-सुख-विलास का वर्णन बहुत ही सूक्ष्म, सुन्दर और सरस है। रतिविलास में कवि की करुणा-कालिन्दी प्रवाहित होती है। और **रघुवंश** का कवि अपनी प्रौढ़-प्रतिभा द्वारा एक उत्कृष्ट एवं प्रांजल काव्य की सृष्टि करता है। इसमें रघु के वंश का जो वर्णन है वह कवि

की मौलिक प्रतिभा की देन है। रघुवंश में उत्पन्न होनेवाले राम की दुंदुभी रामायण में वज उठती है, पर स्वयं रघु रामायण में भी उपेक्षित बन जाता है। कालिदास ने उपेक्षित रघु को जिस रूप में प्रस्तुत किया है, वह सर्वथा अभिनव है। इसमें दिलीप से लेकर अग्निवर्ण तक का वंश है, ऐसा सुन्दर मनोहारी वर्णन अन्यत्र नहीं है। इसमें कवि कीं प्रतिभा ने चरम विकास प्राप्त किया है। यद्यपि यह राजवंश का वर्णन है, किन्तु 'रामराज्य' के आदर्श का भव्य रूप, और प्रजासत्ता के सूत्र इसमें बहुत कौशल से चित्रित किए गए हैं। कवि का यह काव्य बेजोड़ है, संस्कृत-साहित्य की अनुपम कृति है। १९ सर्गों में समस्त भारतवर्ष का सर्वांगपूर्ण चित्र अंकित हुआ है।

मालविकाग्निमित्र—महाकवि की प्रथम नाट्य-कृति होना चाहिए। भास, सौमिल्ल आदि कवि के पूर्ववर्ति नाटककारों का प्रभाव समाज पर प्रतिष्ठित था, ऐसी स्थिति में मालविकाग्निमित्र का आविर्भाव संकोच-प्रदर्शन के साथ (नाटक के आरंभ के वर्णन से स्पष्ट है) होता है। यह व्यक्ति-वर्णन परक नाटक है, इसके पश्चात् की किसी कृति में कवि ने आदर्श और उदात्त नायक के अतिरिक्त कोई पात्र अंकित नहीं किया है। भास की वासवदत्ता की तरह इस नाटक में मालविका को लेकर एक प्रकार से भास आदि की शैलि का अनुकरण किया है। यह पांच अंक का ऐतिहासिक नाटक है। विदिशा के अग्निमित्र नरेश (शुंग) का अपने अंतःपुर में विदर्भ की प्रच्छन्न बन रहनेवाली राजकुमारी से प्रणय होता है, और विदूषक एवं महाराणी धारिणी के प्रयास से वह विवाह में परिणत हो जाता है। यह ऐतिहासिक घटना नाटक के रूप में बहुत आकर्षक ढंग से अंकित हुई है। भास की अपेक्षा यह नाटक अपनी स्वतंत्र मौलिक और नवीन शैलि में निर्मित है, यद्यपि भास का अनुकरण स्पष्ट प्रतीत होता है। पात्र, शैलि, दृश्यों की योजना में भास-कालिदास में विशेष रूप से साम्य है, इसी कारण यह प्रथम कृति, और शुंगकाल के निकट-कालीन लेखक की रचना है।

विक्रमोर्वशीय का नायक राजा पुरूरवा, और उर्वशी है। उर्वशी के प्रणय में बंधकर भटकता है, वियोग में विकल हो जाता है, दूसरी ओर उर्वशी भी स्वर्ग के एक अभिनय में प्रणय-विकलता के कारण सहज भूल कर जाती है और भरत के द्वारा अभिशप्त हो मानव-लोक में पहुँचा दी जाती है। जिस प्रकार मालविकाग्निमित्र में महाराणी धारिणी स्वयं अग्निमित्र को सुखी बनाने के हेतु से मालविका को विवाहित कर देने में योग देती है, उसी प्रकार पुरूरवा की महाराणी भी उर्वशी को अपने पति से विवाहित करवा देती है। गंधमादन गिरि पर विहार करने के लिए नवदम्पति

जाते है, वहाँ कुमार-वन में उर्वशी सहसा चली जाती है, और वहाँ लता के रूप में परिवर्तित हो जाती है। उस समय पुरूरवा की व्यथा, कवि की कृति में सजीव और स्वाभाविक बन हृदय के मर्म को छू लेती है। लता से स्पर्श करने पर वह पुनः पूर्वरूप प्राप्त कर लेती है, कुछ काल के बाद वह पुत्रवती बन जाती है, किन्तु पुत्र को वह एक आश्रम में रख देती है, किन्तु एक रोज बालक पुरूरवा के समक्ष आजाता है, इन्द्र दोनों के एकनिष्ठ स्नेह से प्रसन्न हो दोनों को आजीवन साथ रहने की अनुमति प्रदान कर देता है। इस प्रकार यह नाटक बहुत रोचक हो उठता है। पौराणिक कथा को कवि की प्रतिभा ने नवीन रूप से कलापूर्ण प्रस्तुत किया है।

अभिज्ञान शाकुंतल—यद्यपि दुष्यन्त, और शकुंतला की पुराण-परिचित कथा पर आधारित है, किन्तु कालिदास ने इस कथा को अपनी कला की कोमलता से सप्राण, और अमर बना दिया है, नाट्य-जगत् की यह अद्भुत, अपूर्व, असाधारण कृति है। यही कारण है कि इस नाटक ने विश्व के साहित्य में शीर्षस्थान प्राप्त किया है, और इसके द्वारा भारतीय साहित्य एवं समाज को विदेशों में गौरव प्राप्त हुआ है। मानव और प्रकृति की जिस प्रकार एकात्मता निसर्ग-सुता शकुंतला में प्रकट हुई है, वह अत्यंत स्वाभाविक होते हुए भी अप्रतिम है। जिस समय आश्रम से शकुंतला की विदाई होती है, उस वर्णन को पढ़कर या अभिनय में प्रत्यक्ष कर, वीतराग महर्षि कण्व की तरह प्रत्येक हृदय करुणा की निर्मल-सरल स्रोतस्विनी में प्रवाहित हुए बिना नहीं रह सकेगा। इस मनोहारी कथा में रस मूर्त बन गए हैं, कवि की यह अमर कृति विश्व-साहित्य की अमर निधि है, जर्मन महाकवि गेटे इसके केवल अनुवाद को पढ़कर मुग्ध हो उठा था। अबतक भी शकुंतला नाटक की तरह कोई अन्य कृति संस्कृत-साहित्य में निर्मित नहीं हो सकी।

महाकवि का 'रघुवंश' महाकाव्य और उसकी मौलिकता

महाकवि कालिदास की रचनाओं में शाकुन्तल और मेघदूत ने विश्व-साहित्य की सफल यात्रा की है। इन यात्राओं से इस महान् राष्ट्र के साहित्यिक गौरव की प्रतिष्ठा बढ़ी है। शाकुन्तल एवं मेघदूत ने विविध विदेशी भाषाओं में प्रतिष्ठा के साथ प्रवेश प्राप्तकर उनको भी समृद्ध बनाया है। अवश्य ही कुमारसम्भव और रघुवंश जैसे महाकाव्यों ने विशेष विदेश-प्रवास नहीं किया है; परन्तु इन काव्यों की अपनी स्वतन्त्र विशेषता है, और वह विशेषता, महाकवि की महिमा और महत्ता को बढ़ानेवाली ही है। रघुवंश, जैसा कि उसके नाम से ही स्पष्ट है, रघुकुल की व्यापक विशेषताओं से परिपूर्ण सर्वांगसुन्दर महाकाव्य है। कवि की सूक्ष्म दृष्टि, और उज्ज्वल प्रतिभा उसमें खुलकर प्रकट हुई हैं। यद्यपि महर्षि वाल्मीकि और अन्य विशिष्ट आचार्यों ने राम के रघुकुल का ही बहुत विस्तार में, ओजस्विता के साथ रामायण आदि में वर्णन किया है और उसे रघुवंश-वर्णन के नाम से ही ज्ञापित किया है; परन्तु रामायण के २४,००० श्लोकों में जिस रघुवंश का विस्तार से वर्णन किया है, उसमें स्वयं 'रघु'-राजा का नाम-निर्देश के अतिरिक्त, उतना सूक्ष्म, सुन्दर, सविस्तर वर्णन नहीं है, उनके वंशजों के प्रति उदारता अवश्य दिखाई गई है। स्वयं 'राम' जिस 'रघुवंश' की संतान हैं और जिन्हें 'राघव' भी कहा जाता है, उस 'रघु' के व्यक्तित्व की जानकारी महर्षि वाल्मीकि की अमर कृति में भी हमें दिखाई नहीं देती। राम के समक्ष उसके कुल के मूल-महापुरुष का व्यक्तित्व लुप्त हो गया है। अवश्य ही महाकवि कालिदास ने रघु और रघुवंश की महत्ता को रामायण से पहचाना है। संभवतः उसकी काव्य-कल्पना की प्रेरणा, और महाकाव्य के नामकरण की सूचना भी रामायण से ही प्राप्त हुई स्पष्ट प्रतीत होती है; किंतु महाकवि ने 'रघु' के जिस उदात्त चरित्र का सुन्दरता से अपने काव्य के १८ सर्गों में वर्णन किया है वह किसी भी रामायण या पुरातन पुराण ग्रंथ में प्राप्त नहीं होता है। यह केवल महाकवि की मौलिक प्रतिभा की विषय-वस्तु ही है, जिसे अत्यन्त स्वाभाविक रूप से उसने साहित्य-जग के समक्ष अमर वस्तु बनाकर प्रस्तुत कर दिया है। रघु-राजा के विषय में साहित्य मौन है, जब कि उसकी विशेषता को लेकर अद्यावधि उसका नाम 'रघुवंश' के रूप में सम्मान का भाजन बना हुआ है। 'राम' महान् है; पर उससे भी महान

'रघु' है जिसके वंश में राम' ने जन्म लेने का सौभाग्य प्राप्त किया है। उस सौभाग्यशाली रघु' का जो आदर्श एवं उदात्त चरित्र महाकवि ने हमारे समक्ष रखा है, वह चाहे उसकी मौलिक कल्पना से प्रसूत हो, या किसी अज्ञात आधार पर अवलंबित, पर, रघु-राजा के महत्त्व से हमारे समाज और साहित्य को प्रथम परिचित कराने का श्रेय महाकवि को ही है। जिस प्रकार महर्षि ने अपने आदिकाव्य में राम-सीता को सर्वोपरि स्थान देकर लक्ष्मण के वनवास-काल में विरह-पीड़िता उर्मिला को उपेक्षित किया है, उसी प्रकार रघु के महान् चरित्र को विस्मृत कर उसके कुलजात राम की ही कथा-गाथा से विशाल रामायण को अंकित किया है। उस उपेक्षित किन्तु महान् रघु के चरित्र को कवि की कुशाग्र मति ने ग्रहण कर लिया, और इस कुशलता से उसे अंकित किया है कि काव्य और 'रघुवंश' दोनों ही साहित्य एवं कथा-सृष्टि में अमर बन गए हैं। राम की अमरता यदि महर्षि के कारण है, तो रघु-चरित्र का महत्त्व महाकवि के कारण ही है। महाकवि के समय कह नहीं सकते कि 'रघु' के सम्बन्ध में कोई साहित्य उपलब्ध था या नहीं; पर आज के किसी भी उपलब्ध साहित्य में ठेठ आदिकाव्य से लेकर कोई भी 'रघुचरित्र', जिस प्रकार महाकवि द्वारा वर्णित है, कहीं प्राप्त नहीं होता है।

महाकवि का रघुवंश महाकाव्य, अवश्य ही, मेघदूत की तरह, मानव-मात्र के विरह-प्रतिवेदन करनेवाला मनोहारी नहीं है; परन्तु वह काव्य-जग का एकमात्र श्रेष्ठ महाकाव्य अवश्य है। कवि की ऐसी प्रतिभा उसके दूसरे काव्य में, और अन्य किसी भी महाकवि की कृति में, दृष्टिगोचर नहीं होती। उसके रघुवंश में आनन्द का जो अजस्र स्रोत प्रवाहित होता है, वह दो हजार वर्ष बीत जाने पर भी बराबर मानव-मन को रसमय, एवं विमोहित बनाए हुए है। उसकी सुन्दरता, सरसता में किसी भी प्रकार कमी नहीं आ पाई है। कवि की इसी विशेषता ने उसे भारत का ही नहीं समस्त विश्व का अमर कलाकार मानने के लिए हमें विवश बना दिया है। रघुवंश केवल सुन्दर और सरस काव्य ही नहीं है; वह आर्य-जाति के उच्च-आदर्श का प्रतिनिधित्व करनेवाला ग्रंथ बन गया है। एक शब्द में हम उसे आर्यों के एकच्छत्र शासन के निर्वाणोन्मुख दीपक की प्रज्वलित 'अग्नि-शिखा' कह सकते हैं। जिस प्रकार राम और सीता की कथा राजपुत्र और राजकन्या की कथा होते हुए भी समस्त भारत के साधारण नर-नारी के आदर्शों की प्रतीक और जन-जीवन का अंग बनी हुई है, उसी प्रकार 'रघुवंश' किसी राजकुल का आदर्श चरित्र मात्र ही नहीं, समस्त आर्य-जाति के आदर्श का प्रतिनिधि है। इसी प्रकार रघुवंश काव्य की सौन्दर्य-सृष्टि में ही मौलिकता नहीं, उसके स्वयंकल्पित रघु-चरित्र की उदात्तता, प्रगल्भता, नैतिकता, आदर्श और स्वाभाविकता में भी कवि की अभिजात मौलिकता है। रघु-राजा केवल

आदर्श एवं महान् राजाधिराज ही नहीं है, वह मानवता का आदर्श प्रतिनिधि है। महर्षि के आदर्श राम में मानव-सुलभ निर्बलताएँ है और वह आलोचना के अधिकारी बन जाते है, परन्तु कवि के रघु के चरित्र में वे समस्त विशेषताएँ विद्यमान हैं, जिनके वंश में उत्पन्न होने का गौरव राम को महत्त्व दिलानेवाला बना है। आदि-काव्य-प्रणेता के समक्ष राम का प्रत्यक्ष चरित्र रहा है, इस कारण उनके द्वारा रामायण में आदर्श राम का चित्र प्रस्तुत किया जा सका—यह स्वाभाविक होना सहज ही था, परन्तु कवि के समक्ष रघु का न तो इतिवृत्त है, न कल्पना के लिए कोई आधार ही, तथापि वह 'रघूणामन्वयं वक्ष्ये' दृढ़ता से कहता है, और राम को जिसके वंश में उत्पन्न होने का गर्व हो, ऐसे उदात्त-चरित्र की कल्पना-प्रसूत सृष्टि कर आदिकवि के काव्य को चैलेंज दे देता है। यही कारण है कि रामचरित्र की तरह ही रघु का चरित्र भी कवि की कलम से अमर बन गया है। रघु के चरित्र की कथा जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, वाल्मीकि या अन्य ग्रंथ में इतनी विस्तार से नहीं मिलती है, जितनी कवि ने कौशल या कल्पना से प्रस्तुत की है। इसलिये चाहे आदिकाव्य अज्ञात हो तुलसी की रामायण में अवश्य कालिदास के रघुवंश का प्रभाव दृष्टिगत होता है। कालिदास ने रघुवंश में जिस क्रम से रघु के वंश का वर्णन किया है, उसमें, और रामायण, और पुराणों में पार्थक्य प्रतीत होता है। पता नहीं कालिदास ने किस आधार को प्रमाणभूत माना है, और वे कैसे उपलब्ध हुए हैं। यह स्पष्ट है कि संस्कृत कवियों में एकमात्र कालिदास ही इतना सतर्क, सावधान और प्रामाणिक कवि है, जिसकी कृतियों में इतिहास, भूगोल, प्रकृति, स्थल आदि के वर्णन में कहीं भी भूल, असावधानी, अथवा अवैज्ञानिकता को अवसर नहीं मिल सका है। इस पर भी संक्षेप में बहुत-कुछ कहने की अद्भुत सामर्थ्य, भावों में गांभीर्य, अर्थ में गौरव, काव्य में लालित्य, एवं रस-परिपोष की पराकाष्ठा ये उसकी अपनी स्वतंत्र विशेषताएँ रही हैं। इन्हीं विशेषताओं के कारण उसकी मेघदूत, शाकुन्तल, रघुवंश जैसी अमर-कृतियाँ, हजारों राज्यों-साम्राज्यों के उत्थान-पतन और विनाश हो जाने पर, आँधी, तूफान, प्रलय के आते-जाते रहने पर भी, अब तक सर्वकालीन नवयौवन लिए जीवित चली आरही हैं, और दुनियाँ उसे अपने विचार-भेदों के रखते हुए भी, दोस्त बनाकर सम्मानपूर्वक सिर पर बिठाने के लिए बेचैन बनी रहती है। कवि की कृतियाँ यदि ऐसी सर्वकालीन, प्रगतिशील, और सप्राण न हों तो यह कैसे संभव हो सकता था ? आश्चर्य तो यह है कि इतना बड़ा महान् कवि अपने विषय में एक शब्द भी कहीं नहीं कहता; समय, स्थल, काल की भी कल्पना नहीं देता है। फिर भी न जाने किस समय से दुनियाँ उसे उसकी कृतियों के साथ पहचानती ही नहीं, प्यार भी करती चली आरही है।

रामायण या अन्य पुराणों को लीजिए, यदि रघुवंश का वर्णन करना उन्हें अभीष्ट है तो वे दशरथ राजा से लेकर रामचन्द्र तक की कथा-गाथा कहना उचित समझेंगे। परन्तु महाकवि पुराण-परम्परा का आँख मूँदकर अनुगमन नहीं करता है। उसका स्वयं का सिद्धांत है कि 'पुराणमित्येव न साधुसर्वम्' इसलिये वह पुराण-कथा को आधार बनाकर केवल अपनी काव्य की सुन्दरता से किसी कृति को सजाकर नहीं रखना चाहता। इस कारण रघुवंश का वर्णन भी वह दिलीप से आरंभ करता है, और अग्निवर्ण तक लेजाकर अंत करता है। निःसन्देह इस वंश का परिचय 'रघु' के कारण ही आदिकवि ने रघुवंश के रूप में सर्वप्रथम दिया है। और यह पहली 'रघुवंश' की कल्पना कवि को आदिकवि की रामायण से ही प्राप्त हुई है। वाल्मीकि रामायण में स्पष्ट रूप से कहा है:—

(१) 'रघुवंशस्य चरितं चकार भगवान्मुनिः'

(१-३-३९)

(२) 'अवाप्य सीतां रघुवंशजामिमाम्'

(३) 'अहंच रघुवंशश्च, लक्ष्मणश्च महाबलः'

यही नहीं, रामायण में रघुवंश का उल्लेख अनेक बार हुआ है। इसलिए 'रघुवंश' शब्द, और चरित्र की कल्पना कालिदास को रामायण से ही प्राप्त हुई है। इसी प्रकार मेघदूत की कल्पना भी वाल्मीकि रामायण से ही मिली है। यही क्यों, मेघदूत के पचीसों पद्यों पर रामायण की स्पष्ट छाया प्रतीत होती है। परंतु कवि की मौलिकता उसकी कल्पना-प्रवणता पर है। रामायण के संकेतमात्र से सूचित 'रघु' को वह अपने कल्पना-वैभव से एक स्वतंत्र, आदर्श और महान् व्यक्तित्व में सजीव प्रस्तुत कर देता है। आदिकवि, सूर्यवंश के सगर, अंशमान, दिलीप, भगीरथ, इक्ष्वाकु आदि के विषय में अवश्य संक्षेप में वर्णन प्रस्तुत करते हैं; परन्तु जिस नाम से यह सारा वंश प्रख्यात रहा, उस रघु के नाम को अनेक बार पुनरावर्तन करके भी 'नाम' के सिवा उसके किसी भी गुण, महत्त्व अथवा विशेषता का कहीं उल्लेख नहीं करते हैं। ऐसे प्रख्यात, और वंश के परम्परा-चालक किंतु अज्ञातवृत्त, रघु को कालिदास की प्रचण्ड प्रतिभा पकड़ लेती है और उसे काव्यालोक में लाकर आदर्श प्रतिभा में परिणत कर देती है। इसमें संदेह नहीं कि कालिदास की कृतियों पर आदिकवि का विशेष प्रभाव पड़ा है। रामायण का उसने गहराई से अनुशीलन भी किया है। परन्तु रामायण के उपेक्षित रघु का चरित्रांकन कर उसने रामायण के अभाव की पूर्ति ही की है। रामायण में कहीं भी रघु के दिग्विजय अथवा दिलीप की

कामधेनु की कोई कथा नहीं है, परन्तु कवि ने इन्हें बड़े कौशल से स्वाभाविक रूप में चित्रित कर दिया है। हमने ऊपर बताया है कि रघुवंश की जो क्रम-परम्परा कालिदास ने बताई है, वह रामायण में नहीं मिलती। बालकाण्ड के ७० वें अध्याय में रघु की वंशावलि मिलती है, पर वह कालिदास की वंशावलि से भिन्न प्रतीत होती है। पुराणों में दिया हुआ क्रम भी स्वतन्त्र है। कालिदास ने किस आधार पर अपनी वंश-परम्परा सूचित की है, यह अज्ञात है; अवश्य ही उसके काल में कुछ प्रामाणिक साधन सुलभ होंगे, अन्यथा यह तथ्यवादी कवि मनमाना वंश प्रदर्शित करने का साहस नहीं कर सकता था। संभवतः कालिदास यहाँ भी, नाटकों की तरह, अपने पूर्ववर्ती भास-कवि से प्रभावित हुआ है! रघुवंश में हरिवंश, विष्णुपुराण, स्कंद-पुराण, मार्कण्डेय, महाभारत की कथा-गाथाओं के संदर्भ मिलते हैं। अरविंद महर्षि की तो यह मान्यता रही है कि उपनिषदों के आधार पर पुराणों की रचना हुई है, और वे उपनिषद् एवं पुराण अवती में समय-समय पर निर्मित हुए होंगे। तब अवती के कालिदास पर उनका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक हो सकता है। क्योंकि स्कंदपुराण का प्रभाव रघुवंश और कुमारसंभव पर दिखाई देता है। यदि आज के इतिहास-कारों के अनुसार ये पुराणग्रन्थ नवम शताब्दी के हैं तो प्रथम या पंचम शति के कालिदास पर यह प्रभाव कैसे संभव हो सकता है? इतिहासज्ञों की धारणा सही समझी जाए तो कालिदास की रचनाओं का प्रभाव पुराणों पर होना चाहिए, परंतु यह विषय विवेचन एवं विवाद का है, और यह शंका बनी रहती है कि कालिदास के काव्यों की कथा का आधार क्या होना चाहिए?

आदिकवि की रामायण के पाँच-सौ सर्ग, और २४००० श्लोकों में जो कथा विस्तारपूर्वक दी गई है, उसे कालिदास ने अपनी कमनीय काव्य-प्रतिभा से केवल ९ वें सर्ग से १३ वें सर्ग तक सूत्र-रूप में, किन्तु सुन्दरता के साथ समाप्त कर दिया है। युद्ध, और १४ वर्ष के वनवास की राम-कथा भी बड़ी मर्म-मृदुलता के साथ अति-संक्षेप में कह दी गई है। चाहे वह पौराणिक विस्तार की वस्तु न बन सकी हो, किन्तु वह उतनी ही प्रभावोत्पादक अवश्य है। रामायण में लंका जाने का वर्णन विस्तार से दिया है; कालिदास ने उसे लंका से लौटते हुए वायुयान में सीता के समक्ष स्मृति के आधार पर बताया है। विपत्ति-कालीन यह स्मृति सुखद क्षणों में कितनी मार्मिक हो जाती है, कालिदास ही समझ सकता है; रघुवंश के पाठक भी उसका महत्त्व अनुभव कर सकते हैं। कवि का यह वर्णन अत्यंत मनोवैज्ञानिक और अनुभूति के योग्य है। सीता के परित्याग की दुःखान्त घटना कवि ने १४ वें–१५ वें सर्ग में दी है, और कुश राजा के आगे भी राजाओं का सरल एवं संक्षिप्त वर्णन १७ वें एवं १९ वें सर्ग में अंकित किया है, जो वाल्मीकि रामायण में नहीं की तरह ही है। रामायण से कवि को केवल 'रघुवंश' नाम की कल्पना अवश्य प्राप्त हुई है, पर वर्णन स्वतंत्र

और मौलिक ही है, जो कवि की अपनी विशेषता का प्रमाण है। रघुवंश का मध्यभाग (६ से १५ सर्ग पर्यन्त) ही लोकप्रिय राम-कथा से सम्बन्धित है, जब कि इसके पहले और उत्तरार्ध में कवि की अद्भुत प्रतिभा ही मौलिक काव्य-सृष्टि निर्मित करती है, जो अन्यत्र मिलना असंभव है। रामायण के 'रघुवंश' का उल्लेख राम-कथा पर केन्द्रित होकर रह जाता है; किन्तु कालिदास का रघुवंश यथार्थ में उस 'रघुवंश' नाम को सार्थक बना देता है। रामायण का राम मर्यादा-पुरुषोत्तम और आदर्श व्यक्ति है, किन्तु कालिदास का रघु असाधारण-आदर्श मानव है, जिसके वंश में पैदा होने का गौरव राम को भी होता है। इसलिए कालिदास अपने काव्य-सृजनारंभ ही में उस वंश की विशेषता का इस प्रकार वर्णन करता है:—

"सोऽहमाजन्मशुद्धानामाफलोदयकर्मणाम्
आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम् ।
यथाविधिहुताग्नीनां यथाकामार्चितार्थिनाम्
यथापराधदण्डानां यथाकालप्रबोधिनाम् ।
त्यागाय संभृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम्
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम् ।
शैशवेऽभ्यस्त विद्यानां यौवने विषयैषिणाम्
वार्द्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् ।
रघूणामन्वयंवक्ष्ये—" इत्यादि ।

कालिदास-कालीन शासन, और शासक की स्थिति का दिग्दर्शन

महाकवि कालिदास ने अपने काव्य और नाटकों में प्रायः प्रमुख पात्र राजाओं को बनाया है। रघु से लेकर उसके वंश के अग्निवर्ण तक, शाकुन्तल में दुष्यन्त, मालविकाग्निमित्र में अग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय में पुरूरवा, ये पौराणिक और ऐतिहासिक व्यक्ति है; इनके काल की सामाजिक और शासकीय स्थिति का कवि ने अपनी रचनाओं में सुन्दर दिग्दर्शन कराया है। अवश्य ही रघु और दुष्यन्त कवि के उत्कृष्ट नृप-पात्र हैं। यद्यपि अग्निमित्र उतना आदर्श राजा नहीं है। उसके अन्त.पुर में एकाधिक महारानियाँ है फिर भी वह महारानी की दासी के रूप में रहनेवाली प्रच्छन्न विदर्भ-राजकन्या पर आकर्षित होता है, और उसे प्राप्त करने में ही संलग्न रहता है। उसकी महारानी धारिणी भी उसके इस कार्य में सहायक होती है, और स्वयं मालविका को अपने हाथों महाराज को अर्पित करती है। इसमें विदूषक सहायक होता है। राजा की विलासिता यद्यपि शुंगवंश के अन्तिम राजा देवभूति की तरह निम्नस्तर पर नहीं पहुँच जाती है, तथापि वह आदर्श नरेश के रूप में शासक और प्रजानुरंजक प्रतीत नहीं होता। सारे कथानक में केवल विदर्भ-समर की सूचना के समय वह अमात्यों से चर्चा करता प्रतीत होता है। इसी प्रकार अपने पुत्र वसुमित्र के, अश्वमेध यज्ञ के छोड़े गये घोड़े के पकड़ने के लिये सिंधुतट पर यवनों से समर कर, विजयी होने पर तथा उसकी सूचना प्राप्त होने पर भी जहाँ हर्षोल्लास का आयोजन होना चाहिये, वहाँ वह मालविका के उपहार पाने की ओर अधिक उत्सुक प्रतीत होता है। इस नाटक में भास के नृप-पात्रों की तरह अन्तःपुर की पुरानी महारानियाँ प्रतिकूल-अनुकूल बनकर मध्यस्थता करती दिखाई देती हैं; किन्तु शाकुन्तल में यह अपवाद है कि वहाँ कोई पिछली महारानी प्रत्यक्ष नहीं होती। वहाँ आद्यंत शकुन्तला ही समक्ष रहती है, और विदूषक की भी उतनी प्रमुखता नहीं रहती। अवश्य ही दुष्यन्त ऋषि-आश्रम में प्रवेश करके भी वहाँ शकुन्तला पर मोह-पाश डालता है, और विलासी वृत्ति प्रकट करता है, तथापि उसकी यह वृत्ति शकुन्तला से विवाहित हो अपने राज्य में वापस पहुँच जाने पर कहीं प्रकट नहीं होती। वहाँ वह एक आदर्श, विशुद्ध-वृत्ति, सविवेक और विनयशील राजा ही प्रतीत होता है। पुरूरवा और उर्वशी में भी यह वृत्ति लक्षित होती है और विरहोन्माद भी करुणोत्पादक बन जाता है, किन्तु कवि के

पात्रों में 'रघु' राजा ही ऐसा उदात्त-चरित, आदर्श व्यक्ति है, जहाँ भारतीय-आर्य आचार-मर्यादा और विवेक का परमोत्तम स्वरूप साकार बन गया है। वहाँ राजा के जिस आदर्श की अभिव्यक्ति हुई है, वह अद्वितीय है। रघुवंश का राजा, प्रजा का प्रतिनिधि है, नेता है, पिता है।

प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि ।
सपिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः ।।

इसी प्रकार—

क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्रः
क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषुरूढः ।
राज्येन किं तद्विपरीत वृत्तेः

रघुवंश के वर्णन करते हुए कवि राजा को दैवी अंश में प्रकल्पित करता है। प्रायः भारतीय साहित्य में नरेश को विष्णु का अवतार, अलौकिक देव-पुरुष के रूप में अंकित किया गया है। उसमें विशेष शौर्य, धैर्य, औदार्य, दाक्षिण्य बताया गया है तथापि इन गुणों से समन्वित होते हुए तथा जनानुमति से सिंहासनासीन होते हुए भी, प्रकृति-विपर्यास होने पर सिंहासन से भ्रष्ट होते हुए भी देखा जाता है। ब्राह्मण के प्रति अबध्य भावना के नैतिक नियम रहते हुए पथभ्रष्ट नरेश-ब्राह्मण रावण के वध का वर्णन भी प्रत्यक्ष है। अवश्य ही वेद-काल में केवल अथर्व-वेद में एक बार ही (२०-१२७-७) राजा के देवत्व की कल्पना मिलती है, उसे ब्राह्मण, सूत्र, और पुराणों में विस्तृत कर महत्त्व प्रदान किया है। वही कालिदास ने भी अपने 'राजा'-पात्र में स्वीकृत की है। महाराणी सुदक्षिणा के गर्भस्थ संतान में श्रेष्ठ, अष्ट-दिग्पालों, देवों के विशेष-अंश का अभिनिवेश बताया है 'गुरुभिरभिनिविष्टंलोक-पालानुभावैः' तथा 'सुरेन्द्रमात्राश्रित गर्भ-गौरवात्'। कालिदास ने इस प्रकार उन स्मृतियों का ही अनुकरण किया है जिनमें—'बालोपि नावमन्तव्यः मनुष्य इव भूमिपः' तथा 'महती देवताह्येषा नृपरूपेण तिष्ठति'—कहकर राजा को 'देवांश' बताया है। यही नहीं राजकुमार के बालक रहते हुए भी उसमें प्रभुत्व की सूचना की है; जैसे—'षड्वर्षदेशीयमपि प्रभुत्वात्' और 'शब्दोमहाराजइतिप्रतीतस्तथैव तस्मिन् युयुजेऽर्भकेपि।' राम के जन्म के समय भी स्वयं विष्णु ही दाशरथि बनकर उत्पन्न होने का स्पष्ट उल्लेख है—'सोहं दाशरथिर्भूत्वा' और कुमारसंभव काव्य में भी शंकर और पार्वती के द्वारा महासेनानी—कार्तिकेय—के जन्म के लिए इन्द्रादि देवों ने बड़े प्रयत्न से विष्णु के अवतार लेने का 'यत्न' किया है। ये सब बातें राजा के विशिष्ट अंश होने की परम्परा की प्रतीक हैं। यह 'देवत्व' कालिदास ने अपने जिन

राजवंशों के वर्णन में किया है उन्हें कवि ने अपनी रचना में भी उसी प्रकार उदात्त-रूप में अंकित किया है। परन्तु वे राजा दैवी-अंश' के होते हुए भी आदर्श मानव हैं, प्रजा के सर्वथा प्रतिनिधि हैं, और अपने शासन में प्रजामत का संपूर्ण समादर करनेवाले हैं। नियम, मर्यादा, परम्परा आदि का वे उचित रूप में पालन करते हैं, चरित्र और कर्त्तव्य-परायणता में वे सतर्क रहते है। जिस प्रकार राम और सीता राजा और महाराणी होते हुए भी आज सर्व-साधारण जन-जन के आदर्श बने हुए हैं, उनकी विशेषता राजा-राणी' तक परिमित नहीं, साधारण परिवार के लिए भी अपनी आत्मीयता बनकर अनुकरणीय बनी हुई है, ठीक उसी प्रकार रघु'-राजा भी आर्यजाति का एक आदर्श मानव बनकर 'रघुवंश' को आजतक अमरता प्रदान कर रहा है। साधारण प्रजा में और राजा रघु में कोई विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती है।

'कुमारसंभव' में कालिदास ने शिव-पार्वती से महासेनानी 'कार्तिकेय' के जन्म का वर्णन कर यद्यपि उसे सुर-समाज में प्रतिष्ठित किया है, और पश्चात्-प्रणीत पुराणों ने उसी प्रकार अपनी कथानकों में अंकित कर लिया है, इसलिए कार्तिकेय के विषय में भी हमारी धारणा देवत्व' की भ्रांत हो गई है। वस्तुतः महाकवि का लक्ष्य वही कार्तिकेय है, जो इस मालव की महत्त्वपूर्ण पुरातन-ऐतिहासिक नगरी माहिष्मती (महेश्वर) के सहस्रार्जुन-हैहय वंश में उत्पन्न होकर, अपनी प्रचण्ड सैन्य-शक्ति द्वारा इस देश पर वर्चस्व प्रतिष्ठित करता है। कालिदास के काल में यह घटना अधिक प्रसिद्ध और प्रभावित रही होगी, और वह मालव-प्रदेश का होने के कारण ही इस महत्त्वपूर्ण व्यक्ति को लेकर अपनी प्रतिभा प्रकट करने को प्रेरित हुआ होगा। पुराण-प्रथित इक्ष्वाकु-कुल में राजा शर्याति उत्पन्न हुआ है। उसीके वंश में वीतहव्य का जन्म हुआ था। हैहय उसी वीतहव्य का पुत्र था, इसीके शौर्य के कारण माहिष्मती के हैहयों को ख्याति प्राप्त हुई थी। हैहयों में कृतवीर्य, और उसका पुत्र कार्तवीर्य सर्वाधिक प्रसिद्ध हुए हैं। इनके संघर्ष की कथा बहुत विस्तृत है, इसी कारण ये महासेनानी (मार्शल) माने गये हैं। इन्हें ही अथर्ववेद में 'मल्व' कहा गया है। पुराणों ने भी इन्हें 'माल्व' माना है। इसी हैहय कार्तवीर्य को कालिदास ने अठारह द्वीपों में यज्ञयूपों को गाड़नेवाला, और संग्राम में सहस्र-बाहु द्वारा शौर्य प्रतिष्ठित करनेवाला और 'राजा' शब्द जिसके लिए 'अनन्य' था, ऐसे विशिष्ट व्यक्तित्व के रूप में बताया है:—

संग्राम निर्विष्टसहस्रबाहुरष्टादश द्वीप निखात यूपः।
अनन्य साधारण 'राज' शब्दो बभूव योगी किल कार्तवीर्यः।।

(रघु० ६-३८)

रघुवंश का 'सहस्रबाहु' शब्द स्पष्ट संकेत करता है कि कवि किस 'कार्तवीर्य' के विषय में यह वर्णन कर रहा है। उसका अनन्य राजा कार्तवीर्य सहस्रार्जुन-वंश का

हैहय कार्तवीर्य ही है। हमारा विश्वास है कि इसी कार्तवीर्य के पुत्र कृतवीर्य ने 'कृत-संवत्' की प्रतिष्ठा की होगी, जो आगे चलकर गालव-संवत् और विक्रम-संवत् क्रमशः बना है। इस बात को कवि जानता है, और वह अपनी रचना में अमर बना देता है। आज भी माहिष्मती में कार्तवीर्य की मूर्ति और मन्दिर उस स्मृति की परम्परा बनाए हुए प्रत्यक्ष हैं। कालिदास ने उसे 'शिव' का विशिष्ट अंश बताकर, पुराणों को प्ररित किया प्रतीत होता है, इस कारण वह साधारण मानव, शौर्य-शाली नरेश, और महासेनानी होते हुए भी केवल शंकर-पार्वती की संतान और केवल देवता बनकर रह गया है; 'अनन्य साधारण 'राज' शब्द जैसे उपेक्षित हो गया हो। परन्तु यह स्पष्ट है कि वह कार्तवीर्य नर्मदा-तटवर्ति माहिष्मती का असा-धारण ओजस्वी राजा था:—

"···· माहिष्मतीवप्रनितम्बकांचीम्।
प्रासादजालैर्जलवेणिरम्यां 'रेवां' यदि प्रेक्षितुमस्तिकामः ॥"

(रघु० ६-४३)

महाकवि ने इन्दुमति स्वयंवर में एकत्रित जिन राजाओं का वर्णन किया है, उनकी विशेषता चरित्र, गुण, शौर्य, जन-प्रियता आदि समझने योग्य हैं। आर्यो की उच्च संस्कृति के उनमें दर्शन किये जा सकते हैं। जिस वंश में उत्पन्न होने का रामचन्द्र को गौरव प्राप्त है, उस रघु की महत्ता कालिदास ने अंकित की है, वह अत्यन्त आदर्श है, और आर्यो की श्रेष्ठता का उदाहरण है।

उसने आरम्भ ही में कहा है कि 'जिन प्रतापी रघुवंश का वर्णन करने जा रहा हूँ, उनके चरित्र जन्म से मरणपर्यंत पवित्र रहे हैं, वे जो काम हाथ में लेते थे, पूर्ण करके ही चैन लेते थे, जिनका राज्य समुद्र तक विस्तृत था, जिनके रथ पृथ्वी से सीधे स्वर्ग तक जाते थे, जो शास्त्रों के नियमानुसार ही यज्ञ करते थे, जो माँगनेवालों के मनोरथ पूर्ण करते थे, अपराधियों को अपराध के अनुरूप ही दण्ड देते थे, अवसर देखकर काम करते थे, जिनका धन-संग्रह दान देने के लिये ही होता था, जितना कर सकते थे, उतना ही (सत्य) भाषण करते थे, किसीका राज्य या सर्वस्व हरण करने के लिये लड़ाई नहीं लड़ते थे, वरन् यश के लिये विजय करते थे, विलासिता के लिये नहीं संतानार्थ ही विवाह करते थे, किशोर-वय में अध्ययन यौवन में संसार-सुख का उपभोग, और वृद्धावस्था में तपस्वियों-सा जीवन व्यतीत करते थे।'

यह रघुवंश की विशेषता कवि ने बताई है। जरा रघु के राज्य के चरित्र की उच्चता की कल्पना तो कीजिए कि जिस पृथ्वी पर दिलीप का शासन था, वहाँ किसी 'अभिसारिका' के वस्त्र के अंचल के छोर के छूने का साहस वायु भी नहीं कर सकता था। यह उनके दण्ड-शासन का नहीं, आदर्श और नैतिक व्यक्तित्व का प्रभाव था।

वातोऽपि नास्रंसयदंशुकानि
को लम्बयेदाहरणाय हस्तम्। (रघु० ६-७५)

इस विषय में "स्ववीर्य गुप्ताहि मनोः प्रसूतिः" शब्द प्रसिद्ध ही है। वहाँ दूसरों की स्त्री की चर्चा करना तक अनुचित समझा जाता था, 'अनिर्वचनीयं परकलत्रम्'। जहाँ चरित्र का यह आदर्श हो, उस समाज और उसके नृप के विषय में क्या कहना चाहिये ? उस समय शर-सन्धान की 'ज्या' शब्द के कहने की भी आवश्यकता नहीं होती थी, केवल 'हुंकार' कर देने से ही विघ्न-बाधाएँ दूर हो जाती थीं, इसीलिये कवि ने उन राजाओं के प्रभाव के विषय में कहा था—

"अचिन्तनीयस्तुतव प्रभावः"

रघुवंश के राजाओं को अत्यन्त प्रजाप्रिय बताया गया है। 'प्रकृति-रंजन' के कारण ही राजा का नाम सार्थक समझा जाता था। जिस समय (रघु० १५ वाँ सर्ग) राम अयोध्या से वन-प्रयाण करने लगते हैं, तब कवि ने सूचित किया है कि सारी अयोध्या वहाँ पहुँच गई थी 'जड़' होने के कारण केवल 'घर' ही जहाँ के तहाँ खड़े रह गये थे। इसी प्रकार दुष्यन्त की खोज में भी समस्त पुरवासी तपोवन की ओर पहुंच गये थे (पौरा अस्मदन्वेषिणः तपोवनमुपरुन्धन्ति)। इससे राजा और प्रजा के पारस्परिक स्नेह का स्पष्ट संकेत मिलता है। राजा के दर्शन कर "ननन्दुः सप्रजाः प्रजाः" तथा "पौरैरभिनन्द्यमानः", "प्रजाः प्रजानाथमितेवपासि", "प्रजाः प्रजाः स्वाइव तन्त्रयित्वा", 'प्रजा स्निग्धेन बन्धुना", इन वाक्यों से राजा के प्रजा के साथ सम्बन्ध केवल शासकीय ही नहीं, अत्यन्त स्निग्ध, और आत्मीयता से ओतप्रोत प्रतीत होते हैं। वह राजा मनस्वी, निरंकुश नहीं रहता था, उसे लोकापवाद की बहुत सावधानी रहती थी, वह उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता था। उसे महत्त्व देता था। कवि ने स्पष्ट बताया है कि—

'लोकापवादो बलवान्मतो मे' (रघु० १४-४०)

"मां लोकवाद श्रवणादहासीः", "मिथ्यापवाद क्षुभितेन भर्त्रा", कौलीन, भीतेन आदि वाक्य इसके प्रमाण हैं कि रघुवंश में लोकापवाद को कितना महत्त्व दिया जाता था। सीता का परित्याग इसका ज्वलंत प्रमाण ही बन गया है। इसी प्रकार उत्तराधिकार के सम्बन्ध में भरत का त्याग और रामचन्द्र के सिंहासन पर आसीन कराने का उदाहरण प्रत्यक्ष है।[1] कालिदास के काल में राज-पद्धति में एकतंत्री, और द्वैराज्य-पद्धति का भी प्रयोग हुआ है। अग्निमित्र ने विदर्भ के दो राजकुमारों को वरदा नदी के दोनों तटों पर दो भागों के राज्याधिकार प्रदान किये थे। विजय कर लेने पर भी 'राज्यश्री' का हरण किया जाता था, राज्य का नहीं। जहाँ ज्येष्ठ पुत्र को राज्याधिकारी मानने की मर्यादा मानी हुई थी, वहाँ राजपुत्रों में राज्य विभाजित भी होता था।

---

१. दृढ़ भक्तिरिति ज्येष्ठे राजतृष्णा पराङ्मुखः (रघु० १२–१९)

शत्रुघ्न और सुबाहु को मथुरा, एवं विदिशा में बिठाया था (रघु० १५-३६); लक्ष्मण ने अंगद और चन्द्रकेतु को समानाधिकार-प्रभुत्व प्रदान किया था; राम ने कुशावति में 'कुश' को, और शरावति में लव' को शासक बनाया था। अवश्य ही कालिदास ने किसी स्थान की अराजकता का कोई उल्लेख नहीं किया है। किन्तु जहाँ राजा न हो, उस भूमि की अवस्था का 'अनाथ और दीन प्रकृति' के रूप में एवं 'अस्तमितेश्वर राज्य' का संकेत मात्र किया है। राजा यद्यपि एक विशिष्ट व्यक्ति होता है, पर कालिदास उसे सुखी नहीं मानता 'राज्ञांतु चरितार्थता दुःखोत्तरैव' कहकर बताता है। अवश्य ही कालिदास की राजधानियाँ अत्यन्त सुन्दर-समृद्ध, योग्य शिल्पियों के परामर्श से निर्मित, कलापूर्ण, नदी-नद, उपवन से रमणीय, चौड़े राजमार्ग से सुशोभित, प्रकृति और जलाशयों में आत्मीयता, पशु-पक्षियों से प्रफुल्लित, संरक्षण की दृष्टि से व्यवस्थित सूचित की हैं। अयोध्या की सरयू को राजा 'स्रोयंमदीया जननीव' अपनी माता की तरह सन्मान देता है। महर्षि वाल्मीकि ने भी—

'ईक्ष्वाकूणा नियंभूमिः सशैल वन-कानना'

कहकर आत्मीयता प्रकट की है।

इसी प्रकार जिस मंदिर से मूर्ति हटा दी जावे उस देव-गृह की जिस तरह दुर्दशा हो जाती है, राजा के बिना राजधानी की भी वैसी ही कारुणिक स्थिति बन जाती है। रघुवंश के १६वें सर्ग में उसका चित्र प्रस्तुत किया गया है। जहाँ अभिसारिकाएँ जाया-आया करती थीं, वहाँ चमगादड़ें या स्यार घुमने हैं, जिन जलाशयों को प्रमदाओं के कोमल कर क्रीड़ा से उछाला करते थे, वहाँ भैंसें स्नान करती है, क्रीड़ा-मयूर के स्थान पर जंगली पक्षियों का प्रवेश, महलों में जहाँ रमणियों के महावर लगाए हुए गीले पैर पड़ते थे, वहाँ सिंहों के पैर पड़ते हैं, जहाँ प्रासादों के स्तम्भों पर रमणियों के स्तनों को आच्छादित करनेवाले वस्त्रांचल पड़ते थे, वहाँ साँपों की कुंचिकियाँ दिखाई देती है, विलासिनियों ने जिन लताओं को स्नेहसहित सम्हाला था, वहाँ जंगली लंगूर कूद-फांद करते हैं, इत्यादि वर्णनों से राजधानी में राजा के अभाव में क्या स्थिति हो जाती है, उसका कालिदास ने बहुत बढ़िया वर्णन किया है। रक्षा, सैन्य, कोष, युद्ध, विजय, शासन, प्रवास, आश्रम, मंत्रणा आदि का जैसा उत्कृष्ट वर्णन कवि ने किया है, वह वास्तव में आदर्श राजा और राज्य का ही चित्रण है, आर्यावर्त्त की संस्कृति और महत्त्व के सर्वथा अनुरूप है। इस प्रकार कालिदास के राजा, राजवंश, शासन आदि के वर्णन, उसके काल के सामाजिक एवं शासकीय रूप का हमारे समक्ष प्रत्यक्ष चित्र प्रस्तुत करने में सहायक होते हैं, और वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भी हैं।

कालिदास की अलका

अलकाधिप कुबेर के कर्मचारी यक्ष ने कुछ अपराध किया था, परिणाम-स्वरूप उसे एक वर्ष तक अपनी प्रियतमा से दूर जाकर रहने का दण्ड दिया गया। इस कठोर दण्ड को सुनकर यक्ष, अलका-परित्याग कर, मध्यप्रांत के रामगिरि (रामटेक) पर्वत पर विरह-काल व्यतीत करने को चला गया। थोड़े समय के बाद आषाढ़ मास आया; वर्षा के दूत—मेघ—आकाश को आच्छादित करने लगे। तब स्वभावतः वह विरह-व्यथा से विकल हो उठा।

उस 'दयिता जीवनालंबनार्थी' यक्ष ने चेतनाऽचेतन ज्ञान से शून्य, धूम-ज्योति-सलिल-मरुत से निर्मित मेघ के द्वारा अपनी प्रियतमा को संदेश पहुँचाने का निश्चय किया। कालिदास ने अपने मधुर मेघदूत-काव्य में इसीका मनोहारी वर्णन किया है।

विरह-व्यथित यक्ष के संदेश ले जाने का कार्य उस चेतनाऽचेतन-ज्ञान-हीन मेघ ने यक्ष पत्नी को धैर्य देने की उदार भावना से स्वीकार किया। रामगिरि से कैलाश तक पथ प्रदर्शित करने के बाद उत्तर की ओर संकेत करते हुए कालिदास ने यक्ष द्वारा मेघ को बताया कि अब—

"गंतव्या ते वसतिरलकानाम यक्षेश्वराणाम्"

अर्थात् तुझे यक्षेश्वरों की निवास-भूमि 'अलका' नगरी में यहाँ से जाना होगा।

जिस अलकावासी यक्ष के विषय में कवि-सम्राट् ने अपने काव्य में रसमय वर्णन किया, उस यक्ष की स्वर्गीय-सौन्दर्य-समन्वित नगरी अलका का अस्तित्व कहाँ था और इस समय कौन-सा स्थान है, इसपर अभीतक शायद विचार नहीं किया गया। संभवतः, अलका को हिमालय का कल्पित स्थान समझकर ही छोड़ दिया गया है।

कालिदास के यक्ष का निवास-स्थान अलका है और इस नगरी और यक्ष-जाति का स्वामी कुबेर है।[1]

---

१. देश के विभिन्न भागों में यक्षों की मूर्तियाँ बहुत मिलती हैं और प्रायः वे शुंगकाल की हैं। उस समय यक्ष-प्रतिमाओं का प्रचलन था। कालिदास शुंग-कालीन था यही कारण है कि यक्ष को पात्र बनाकर उसे काव्य-निर्माण की प्रेरणा हुई। विदिशा में यक्ष-मूर्तियाँ मिलती हैं।
अमरकोषकार ने बताया है—"कुबेरस्त्र्यंबक सखोः यक्षराट्"

अलका से यक्ष का निर्वासन हुआ था, वह रामगिरि जाकर रहा, वहाँ से उसने मेघ को अपनी नगरी का व्यवस्थित रूप से मार्ग बताया; यह मार्ग क्रमपूर्वक है।

रामगिरि से जब मेघ रवाना होता है, तब वह माल (क्षेत्रमारुह्य मालम्—मेघ०) क्षेत्र से होता हुआ बढ़ता है। यह 'माल-क्षेत्र' सतपुड़ा-अमरकण्टक (आम्रकूट) के निकट का स्थान है। 'माल' शब्द की व्याख्या, कोषकार के अनुसार, 'ऊंचा भूतल' (मालंमुन्नत भूतलम्) है। और—

मालंदेशे वनेष्युक्तं मालं ग्रामान्तराटवी।
मालं मालव देशेच वर्त्तते भूमि रूर्ध्वकः ।।

माल-क्षेत्र के आगे आम्रकूट (सानुमानाम्रकूटः-मेघ०), यह प्रसिद्ध 'अमरकंटक' स्थान है। अमरकंटक से चलकर विन्ध्याचल के नीचे प्रवाहित होने और रेवा नदी के दृश्य देखने का अनुरोध किया गया है।[1] रेवा (नर्मदा) के बाद दशार्ण का नाम है,[2] इसके पश्चात् नीचगिरि पर जाने की सूचना की गई है (नीचैराख्यं गिरिमधिवसेः—मेघ०)। यह उदयपुर (विदिशा के निकट) होना चाहिये। इस नीचगिरि से विदिशा द्वारा वक्रमार्ग होते हुए भी मेघ को उज्जैन जाने की साग्रह प्रेरणा की गई है (वक्रः पन्थाः यदपि भवतः प्रस्थितोत्तराशां सौधोत्संग प्रणय विमुखोमास्मभूरुज्जयिन्याः—मेघ०)। इस अवसर पर पुनः यक्ष मेघ को स्मरण दिलाता है कि तुझे उत्तर दिशा की ओर जाना है; फिर भी उज्जैन देखकर आगे बढ़ना। उज्जैन के मार्ग में गंभीरा नदी का उल्लेख है, यहाँ स्कंद का स्थान सूचित कर 'देवगिरि' का संकेत किया है।[3]

---

१. विन्ध्यपादे विशीर्णा, रेवांद्रक्ष्यस्युपल विषम—मेघ०
रेवाबु नर्मदा सोमोद्भवा मेकलकन्यका—अमरकोषः

२. भरतमल्ल ने दशार्ण के विषय में लिखा है—"दशऋणानि यस्यमः दशार्णः"। 'ऋण' शब्द किले, अथवा जलाशय के लिए प्रयुक्त होता था; दश किले वाला भाग दशार्ण होना चाहिये। इसकी राजधानी विदिशा (भेलसा) थी। आचारांगनियुक्तिकार ने कहा है कि दशार्ण-देशस्थित दशार्ण पर्वत पर गजपद नामक प्रसिद्ध जैनतीर्थ था। पूर्वमेघ में "कतिपय दिन स्थाई हंसाः दशार्णः"। महाभारत तथा अन्य पुराणों में भी दशार्ण का उल्लेख है, "तान् दशार्णान सजित्वाच प्रतस्थे पांडुनंदनः" आदि।

३. "गंभीरायाः पयसि सरितः", "तत्र स्कंदं नियतवसति", और "देवपूर्वगिरिंवै"—मेघ०। यह देवगिरि (वर्त्तमान देवडूंगरी) स्थान है, जहाँ स्कंद (कार्त्तिकेय) का स्थान है।

गंभीरा नदी, एवं देवगिरि से बढ़कर रन्तिदेव की कीर्तिशेष नदी चर्मण्वति[1] (चम्बल). को पारकर दशपुर (मंदसौर) का मार्ग सूचित किया है।[2] यहाँ से अपनी छाया डालते हुए कौरव-पाण्डवों के संग्राम-क्षेत्र कुरुक्षेत्र जाने की सलाह दी गई है।[3] आगे सरस्वती के स्नान द्वारा अंतःशुद्धि कर कनखल की गंगा में जलपान कर[4] हिमपर्वत पर से मेघ को कैलास के अतिथि होने को कहा गया है।[5] इसी कैलास से अपनी प्रिय नगरी 'अलका' को पहँचानने के लिए बताया है। पर्वत के ऊँचे-नीचे हो जाने से अलका भी ऊँची-नीची हो गई है। कैलास की वनराजि से अलका इस प्रकार दिखाई देगी जैसे प्रियतम के अंक में कोई कामिनी अपना मान भूलकर पड़ी हो। यह अलका नगरी ऊँची गगनस्पर्शी (तुंगमभ्रंलिहाग्राः) और ऊँचे सातमंजिले प्रासादोंवाली (उच्चैर्विमानः) है।[6] (यद्विमानाग्रभूमिः—मेघ०)

इस परिचय से यह स्पष्ट है कि अलका नगरी कैलास पर ही नहीं है, वह कैलास पर से दिखाई पडनेवाली जगह है। इसके सिवा वहाँ सतमंजिले प्रासाद हैं गगन-स्पर्शी-उन्नत हैं, उत्तर दिशा में हैं। वहाँ सभी ऋतुओं में फूलनेवाले फूल सुरभि-संचार करते हैं और यह यक्षों की निवास-भूमि है, कोट्याधीशों से कम की श्रेणी के लोगों को वहाँ निवास का अधिकार नहीं है। वहाँ वैभ्राजक नाम का उद्यान भी है।[7] वहाँ कल्पवृक्ष द्वारा मधु का निर्माण होता है। अब हमें ऐसे स्थान की खोज करना है जिसमें ये विशेषताएँ प्राप्त हों।

---

१. रन्तिदेवस्यकीर्तिम्—मेघ०

२. दशपुर वधूनेत्र कौतूहलानाम्—मेघ०

३. ब्रह्मावर्तं जनपदमथच्छायया गाहमानः (सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदंतरम्, तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते)। क्षेत्रंक्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद्भजेथाः—मेघ०

४. तस्माद्गच्छेरनुकनखलं—मेघ०

५. कैलासस्य त्रिदशवनिता दर्पणस्यातिथिःस्याः—मेघ०

६. विमानोऽस्त्री देवयाने, सप्तभूमौच सद्मनी—यादवकोष।
देवयानं विमानोऽस्त्री—अमरः।

७. कुबेर के उद्यान का नाम 'चैत्ररथ' है (अस्योद्यानं चैत्ररथं—अमरः); परन्तु वैभ्राजक-गण से रक्षित होने के कारण इसे 'वैभ्राजक' भी कहा गया है: 'वैभ्राजेन गणेन्द्रेण भानं वैभ्राजमाख्यया'—शंभुरहस्ये।

यक्षजाति का भारत में एक विशेष स्थान रहा है। महाभारत एवं पुराणों में इनकी बहुत स्थानों पर चर्चा हुई है। इनका स्वामी कुबेर को माना गया है, (कुबेरस्त्र्यंबकसखो यक्षराड्— अमर:)। यह कुबेर शिव का मित्र है, कुबेर 'धनपति' है, इसलिए यक्ष लोग समृद्ध होने चाहिए। इन्हें 'वित्तेश' कहा गया है, ये विलासी रहे हैं, इसलिए इनको बुढ़ापा नहीं होता था, युवक ही रहते थे (वित्तेशानां न च खलु वयो यौवनादन्यदस्ति—मेघ०)। और कालिदास ने बताया है कि यक्षेश्वर कुबेर ने ही विलासी यक्ष को निर्वासन का दण्ड दिया था।[1] साधारण जन से लेकर पुराण-साहित्य-स्रष्टा एवं कालिदास भी यही स्वीकार करते है कि कुबेर धनपति' है, और यक्षों का स्वामी। उत्तर भाग में हिम-पर्वतमाला-स्थित एक सुवर्णगिरि स्थान है, यह पुराणकाल में धनिकों की और विशेष रूप से यक्षों की आवास-भूमि रही है।

जैनग्रंथों में 'विचारश्रेणि' को प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। उसके निर्माता मेरुतुंग सूरि एक ऐतिहासिक विद्वान् हैं, ये नाईड के शासनकाल में रहे हैं। उसमें लिखा है—

> "यस्यवारके नव-नवतिलक्ष-धनपतिभिरप्राप्तनिवासे जालऊर समीपस्थे सुवर्णगिरिशृंगे श्रीमहावीर सनाथः श्री यक्षवसत्याख्यो महा-प्रासादो निष्पन्नः।"

अर्थात् निन्नानवे लाख की सम्पत्तिवालों को भी जहाँ रहने के लिये आवास प्राप्त नहीं होता था उस जालउर जालौर) निकटवर्ति सुवर्णगिरिशृंग पर श्री महावीर स्वामी द्वारा सनाथ 'यक्षवसति' नामक स्थान तैयार हुआ।

---

१. वित्ताधिपः कुबेरःस्यात्प्रभौ धनिक यक्षयोः—शब्दार्णवे।

(क) भामिनिविलास (२–१०) में लिखा है—

> "लावण्य धन्येदिशमुत्तरस्याम्
> मनोहरा वैश्रवणस्य लक्ष्मीः
> विभातियस्यां ललिताऽलकायाम्।"

अर्थात् उत्तर में वैश्रवण (कुबेर) की मनोहारी समृद्ध अलका शोभित है।

(ख) ययाति राजा ने पुत्र से तारुण्य लेकर उत्तरस्थित अलका में जाकर निवास किया था, अर्थात् यक्षों के अतिरिक्त अन्य समृद्ध जन भी अलका में रह सकते थे।

इस सौध-श्रृंग पर करोड़ रुपयेवालों को ही रहने की सुविधा मिल सकती थी, और यक्षों का निवास था। इसका एक प्राचीन-गाथा से भी समर्थन होता है—

"नवनवईलक्ख धणवई अलद्धवासे सुवण्णगिरि सिहरे।
नाईडनृपकालीणं धुणि वीरं जख्व वसहीए।"

इस गाथा में 'नाइडनृपकालीणं' में जिम नाईड राजा का उल्लेख है, वह मेरुतुंग के मतानुसार विक्रम की चतुर्थ पीढ़ी का है (विचारश्रेणि, पृष्ठ ३)—

> "विक्रमस्य राज्यं षष्टिवर्षाणि, ततस्तत्पुत्रस्य विक्रमचरित्रा-परनाम्नो धर्मादित्यस्य राज्यं ४० वर्षाणि, ततो भाइल्लस्य ११ वर्षाणि, ततः श्री नाइल्लस्य १४ वर्षाणि, ततो नाईड राज्यं १० वर्षाणि जातम्।"

इस गाथा के अनुसार नाईड का शासनकाल विक्रम संवत् १२६ से १३५ तक है। अर्थात् यक्षवसति का काल १२६ से १३५ के मध्य का होना चाहिए।[1]

'बुद्धिसागर' व्याकरण ग्रंथ में बुद्धिसागर सूरि ने भी इस स्थान के सम्बन्ध में ऐसी ही चर्चा की है—

" श्री विक्रमादित्य नरेन्द्रकालात्
सश्रीक जाबालिपुरे"[2]

इतिहासकार टॉड के मतानुसार यहाँ एक समृद्धिशाली शासन था। वे लिखते हैं—

जिस समय चित्तौड़ के राणा खुमान पर विदेशियों का आक्रमण हुआ तब अनेक राजागण उसके सहाय पर थे उसमें जालौर का सोनगिरि नरेश भी था।

टॉड के कथनानुसार खुमान का शासन संवत् ८६८ से संवत् ८९२ तक था, अर्थात् ९वीं शती तक सोनपुर में स्वतन्त्र शासन था।

एक प्राचीन लेख में जालौर के भोज द्वारा बसाए जाने का उल्लेख है। कायथा (मालवा) ग्राम के संवत् ११९५ के दानपत्र में परमारों का राज्यक्रम बताया है, उसमें चर्चा है। और आबू के एक चैत्य में खुदे हुए संवत् १२९६ के शिलालेख में इस स्थान का नाम आया है—

"जाबालिपुरे सुवर्णगिरिश्रृंगे श्री पार्श्वनाथ जगत्यां" आदि।

ऐसे अनेक प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि सुवर्णगिरि स्थान बहुत पुरातन रहा है, और यह समृद्ध नगर था। उत्तर भाग में यह यक्षों की भूमि थी। कालिदास के अनुसार यह 'तुंगमभ्रंलिहाग्राः' और उच्चैर्विमानः, यक्ष भूमि भी है।

---

१. विक्रम की प्रथम शति में इस स्थान का अस्तित्व था, इस कारण कालिदास का परिचित होना स्वाभाविक हो सकता है।

२. इस ग्रंथ का रचनाकाल संवत १०८० है।

अलकावासी यक्ष कल्पवृक्ष से पैदा होनेवाले 'मधुरस' का पान किया करते थे, उसका नाम 'रतिफल' था। (रतिफलं कल्पवृक्षप्रसूतम्—मेघ०) कल्पवृक्ष-प्रसूत रस को ही रतिफल कहा गया है। मदिरार्णव ग्रंथ में रतिफल' का विधान बताया है। उसमें अनेक वृक्षों फलों का समन्वय है, उसे ही कल्पवृक्ष-प्रसूत कहा है। जिन वृक्ष-फलों से निर्माण-विधि सूचित की गई है, वे पर्वत-भूमि पर ही प्रायः होते हैं। जिन पुष्पों का अलका में होना सूचित किया गया है, वे हिम-उपत्यका में नहीं होते। जहाँ सभी ऋतुएँ होती हैं वहीं उत्पन्न होते हैं। हिमालय में सब ऋतुएँ नहीं होती। कुन्द के पुष्प हेमन्त में खिलते हैं, लोध्र के शिशिर में, शिरीष के ग्रीष्म में, और कदम्ब के वर्षा में खिलते हैं, किन्तु अलका में इन सबका साथ ही खिलना बताया है। यदि अलका कैलाश पर हो तो यह संभव नहीं। इसके अतिरिक्त जहाँ कैलास और हिमालय की शोभा का वर्णन हुआ है, वहाँ कालिदास ने हिम-करका-वृष्टि होना बताया है जो हिमप्रदेश के लिये स्वाभाविक भी है। परन्तु अलका में वर्षा का वर्णन किया है। कालिदास जैसे कवि से ऐसा अस्वाभाविक वर्णन संभव नहीं है। वे मेघ से कहते हैं "तू मेरी प्रियतमा को स्वजलकणिका शीतलेनाऽनिलेन' (उत्तरमेघ) अपने जलकणमिश्रित शीतल वायु के झकोरों से थोड़ा सचेत कर देना" और वैसे ही चमेली की कलि को भी सचेत कर देना। हिमालय में यह कैसे संभव होगा ? सुवर्णगिरि के लिये नाना-गणि नामक विद्वान् १६५१ में निर्मित अपनी जालोर-नगर पंचजिनालय चैत्य परिपाटी में लिखते हैं कि यहाँ प्रचुर वनराजि वनस्पति आदि हैं—

"सोवनगिरि पाराई, थलुवाडी बनसोहई,
वनसपति बहुजाति भाँति दीठई, मनमोहई।"

कालिदास की दृष्टि में यही अलका होना चाहिये जो उत्तर में होकर समुन्नत सौध-प्रासादों से गगनस्पर्श करती है और सुवर्णमयी भूमि है। यक्ष ने अलका को सुवर्णरेतवाली भूमि कहा है (कनकसिकता मुष्टि-निक्षेप गूढ़ैः—मेघ०)। सुवर्णगिरि की वालुकामयी भूमि सुवर्णमाक्षिक का स्थान भी है। वहाँ सुवर्णरजकण मिलते हैं, इसपर पुरातन जनों का मत है कि यहाँ सोने की खदान रही है।

इस पर्वत पर प्राचीनतम वापिका है, जो स्थापत्य-शिल्प का उत्कृष्ट उदाहरण है। कालिदास ने यक्ष के आवास के निकट वापी[1] कदली, और पुष्पित वृक्षों का होना बताया है।

---

१. अलका पर वापी होने का उल्लेख कालिदास, और भागवतकार ने भी बताया है और उसमें कमल के पुष्प होते थे। (भागवत ४ स्कं०, ६ अ०, श्लोक २३–३०)

सुवर्णगिरि की वापी पुष्पों से आवृत है, वनराजि से वेष्टित है। यक्ष शिवपूजक रहा है। कुबेर शिव-मित्र ही था, सुवर्णगिरि पर शिवमन्दिर है, संभव है इसीलिये इसे कैलास कहा हो। संभवतः यही स्थान अलका रहा होगा। यह स्थान जोधपुर से ७० मील दक्षिण में है। यह ऊँचा-नीचा होते हुए हिमालय के निकट तक विस्तृत हो गया है। हिमालय-प्रलंबित पर्वतमाला का यह भाग जैन और अन्य इतिहासकारों ने यक्षवसति बताया है। सुवर्णगिरि की विविध विशेषताओं, स्थल, प्रकृति, वृक्ष-लता, भूगर्भजनित पदार्थों, वापी आदि के कारण मेघदूत-वर्णित अलका से साम्य होने के कारण संभवतः यही वह कान्तिमत्-खण्ड हो जो अपने संदेश-वाहक मेघ को बताया हो।

अलका, हिमालय-पर्वतोत्संग पर प्रतिष्ठित कोई कल्पनारम्य नगरी नहीं हो सकती। कालिदास जैसा तथ्यवादी कवि मेघ को चेतनाऽचेतन शून्य मानते हुए, तथा अपने नायक को कामार्त, और प्रकृति-कृपण समझते हुए भी मानसून के वैज्ञानिक-पथ को बताता हुआ 'दूतत्व' का दुस्तर कार्य करवा लेता है। गगन-विहारी वारिदों को वर्षाकालीन उचित पथ से प्रवासी बनने को प्रेरित करता है। वह किसी नगरी को काल्पनिक क्यों बताएगा ? या अगम्य-स्थली क्यों सूचित करेगा ? यह स्पष्ट है कि जिस अलका को धनिक रम्य-विलास भूमि के रूप में कालिदास ने सूचित किया है वह यदि कालिदास द्वारा स्वयं निरीक्षित नहीं है तो उसके अस्तित्व में आशंका करना भी भ्रमपूर्ण है। कालिदास का मेघदूत यदि रामायणाश्रित कथाभाग की सजीव काव्यरूप अमर कलाकृति है, तो अलका भी वहीं से प्राप्त की हुई पुरातन ऐश्वर्य-मयी भारत की 'पेरिस' भूमि है, लीला-विलास नगरी है, जिसे अपने पुत्र से यौवन लेकर ययाति ने राजैश्वर्य का परित्याग कर विलासिता के लिए चिरयौवन ग्रहण कर उपभोगार्थ जीवन के सुखद क्षणों के लिए चुना था। अलका के वर्णन से रामायण, महाभारत, और पुराण के अनेक स्थल भरे हुए हैं। संभव है महाकवि को काव्य-प्रेरणा की तरह अलका को अंकित करने का प्रसंग आया हो! परन्तु कवि ने जिस प्रकार मेघदूत-वर्णित समस्त स्थलों को उनकी वास्तविक प्रकृति, जीवनी, भौगोलिकता को प्रत्यक्षदर्शी की तरह वर्णित किया है, उसी प्रकार अलका भी है। कवि मानसून (मेघ) के साथ दक्षिण से उत्तरापथ तक चला जाता है, और हमें भी उसके साथ— 'मार्गंतावत् शृणु' (रास्ता सुनते हुए) जाना पड़ता है। कविनिर्दिष्ट पथानुसरण करते हुए हिम-उपत्यका तक (या आरम्भिक उन्नत शृंग तक) जाकर सुवर्णगिरि पर रुक जाना पड़ता है, क्योंकि कवि-वर्णन यहाँ अपनी झाँकी दिखाने लगता है।

कालिदास ने अलका की वापी में सुवर्ण कमलों का वर्णन किया है, वहाँ राजहंसों को भी तैरते बताया है। उनकी शोभा का वर्णन सुन्दरता से किया है। कहा जा सकता है कि हंस तो हिमालय के मानसरोवर में रहते हैं। इससे अलका के विषय में

श्रम करने की आवश्यकता नहीं। इस चर्चा में पुनः कवि का हार्द प्रकट हुआ है। कवि ने अलका की वापी में वर्षा ऋतु आजाने पर हंसों का अस्तित्व बताते हुए कहा है कि यक्ष के रम्य उद्यान की वापी में वास करनेवाले हंस मेघों का गर्जन सुनकर भी मानसर में जाने के लिये उत्सुक नहीं होंगे—

यस्यास्तोये कृत वसतयो मानसं संनिकृष्टम्
नाध्यासन्ति व्यपगत शुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसाः। —मेघ०

मानसर के निकट होते हुए भी हंस उस वापी को (अलका को) छोड़ नहीं जायगे। इससे यह स्पष्ट है कि यह वापी हिमालय के मानसर से दूर अलग चीज है। और हंसों को वर्षा आने पर हिमालय की ओर चल देना चाहिए, पर वर्षा आने पर भी इस अलका से वे मानसर जाने को तैयार नहीं थे। कवि की अलका हिमालय से अलग है, निकटवर्ति जरूर है, पर हिमालय पर नहीं। यदि हिमालय पर ही होती तो हिमालय पर चले जाने की बात असंगत हो जाती। हंसों के विषय में सर्वमान्य मत है कि वर्षा आते-आते वे हिमालय चल देते हैं, दूसरी जगह नहीं रहते। साहित्य-दर्पणकार भी यही कहते हैं। पं० हजारीप्रसादजी ने अपने "हिन्दी साहित्य" की भूमिका में पक्षिशास्त्र विशेषज्ञ की सम्मति उद्धृत की है, उसमें बताया है कि—

"उत्तर और मध्य एशिया में जब कडाके की सरदी पड़ने लगती है तब हंसजाति के पक्षी दल बाँधकर दक्षिण की ओर निरंतर दिन-रात उड़ते हुए हिमालय को लांघते दिखाई देते हैं। प्रजनन और अहार की सुविधा के लिए जुलाई के आरम्भ ही में हिमालय को लाँघना शुरू कर देते हैं और सितम्बर में यह संख्या अधिक हो जाती है।"

इसी तथ्य को लक्ष्य में रखते हुए पक्षि-विज्ञान के मर्मज्ञ कालिदास ने जिस समय मेघ का मार्ग-दर्शन किया वह वर्षारंभ आषाढ़ (जुलाई) महीना ही था। तब उसने कितनी स्वाभाविक बात बताई थी जो वैज्ञानिक भी थी कि मानसर जाने के लिए उत्सुक हंस अपनी चंचुपुटों में मृणालों (कमल-नालों) को लिए गगनपथ से तेरे साथ कैलास पर्यन्त उड़ते हुए जायेंगे, और पथ-प्रदर्शन में सहज सहायक बन जायेंगे—

"आकैलासाद्बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः
संपत्स्यन्ते नभसिभवतो राजहंसाः सहायाः।" —मेघ०

और शीतकाल में तो हंसों का हिमप्रदेश में रहना संभव नहीं, तभी तो वे इधर के दूसरे प्रदेश में उड़कर आ बसते हैं। यदि अलका हिमालय के ऊपर का स्थान होता तो शरद्-शिशिर में अलका में हंस नहीं मिलते; किन्तु यक्ष की वापी का पानी जड़ नहीं बनता, इसी कारण वहाँ हंस बने रहते हैं और वर्षा में भी ये वहाँ से बाहर जाना नहीं चाहते।

यदि अलका कैलासवर्ति कोई नगरी होती तो हंसों को मेघ-दर्शन के बाद मानसर पहुँचना चाहिए था। जब कि स्वयं कालिदास कहता है कि 'हंसों को मानसरोवर जाना चाहिए था, पर वे जाने को तत्पर नहीं हो रहे थे।' पर मानसून (मेघ) के वहाँ पहुँच जाने पर भी वापी के सुधा-स्वादु सलिल को छोड़ने का मन नहीं कर सके।

अतएव वह अलका हिम-पर्वत-मालिका के निकटवर्ति प्रदेश में ही रहनी चाहिए। वहाँ भव्य-भवन, प्राकृतिक सुषमा, वैभवोपासक विलासियों का जमघट और सौंदर्य बिखरा रहता था, उसका परिचय पाना कवि के शब्दों में इतना सहज एवं सरल था कि उस सौधशिखरासीन नगरी के गगनचुम्बी प्रासादों पर वर्षा की रिम-झिम से ऐसी शोभा छा जाती थी कि किसी लावण्य-लतिका ललित रमणी के केश-कलापों में मुक्तामणि गूंथकर कान्तिमय बना दिया गया हो। भला उसे कौन नहीं पहँचानेगा? मेघ के अंदर कान्तिमति-चपला चमकती रहती है, तो अलका में ललित-चपला रमणियाँ हैं। मेघ में इन्द्रधनुष की कलाकारी है, तो अलका भी कलाकारों के चित्रों से रंग-बिरंगी बनी हुई रहती है। जलद यदि गंभीर बन गर्जन करता है तो वहाँ भी संगीत-मृदंग निनाद से हर-भवन का समीर राग-रंग से अनुरंजित रहता है। गगन-संचारी मेघों की समता में अलका के उन्नत—नभस्तल को चूमनेवाले—मनोहारी हर्म्य खड़े हैं, मेघ में चमकता हुआ निर्मल नीर है, और अलका के प्रासादों की भूमि ही रत्नजड़ित झिल-मिल तारकों की ज्योति से ज्योतित है। ऐसी अलका को भला कौन नहीं पहँचानेगा? क्या वह कोई कल्पना की नगरी होकर हिमालय में अगम्य हो सकती है कि जहाँ सिवा कवि की प्रांजल कल्पना के अतिरिक्त कोई पहुँच ही न सके?

'मंदाक्रांता' के रथ पर 'मेघदूत' का प्रवास

छंदों (वृत्तों) की योजना, स्थल, वस्तु, विषय, भावना और विचार पर अवलम्बन रखती है। उसका अपना स्वतंत्र नियम है। जिस प्रकार संगीत में समय, भाव और विषय के अनुसार 'राग'-रस योजना होती है, और वह रस एवं वातावरण को अपना बना लेती है, उसी प्रकार छन्दों का भी विधान है। अनेक कवियों का किसी छन्द-विशेष पर ही अधिकार होता है। उसी में उसकी रचना रस और माधुर्यवती बन सकती है। अन्य छन्दों का प्रयोग उसे उतना सुन्दर साध्य नहीं होता। अधिकारपूर्वक वह अपने अभीप्सित छन्द में ही प्रवाह प्रेरित कर सकता है। किन्तु भाव, रस, और विषयानुकूल छन्दो-योजना कर उसमें सफलता के साथ अपने विचार अभिव्यक्त करने का साहस किसी वश्यवाक्-कवि के लिए ही सम्भव होता है। महाकवि कालिदास ऐसा ही एक अधिकारी है, जो जिस समय जिस विषय के अनुरूप जिस छन्द का प्रयोग करता है, वह उस स्थल पर सप्राण हो उठता है। समस्त रस, सौंदर्य, और माधुर्य उसमें समाविष्ट हो जाते हैं। उसने अनुष्टुप-छन्द जैसे सरल, सीधे छन्द का प्रयोग भी उतने ही सौष्ठव के साथ किया है जितना उपजाति, वंशस्थ, रथोद्धता, वसंततिलका, मालिनी, शिखरिणी, मंदाक्रांता, शार्दूलविक्रीड़ित, स्रग्धरा, द्रुतविलंबित, पुष्पिताग्रा, माल्यभारा, आर्या, शालिनी आदि छन्दों का प्रयोग सरसता, सुन्दरता से किया है। यह उसकी वाक्प्रभुता के प्रमाण हैं। किन्तु जिन छन्दों का प्रयोग जिस स्थल-काल और विषयानुरूप किया जाना चाहिए, उसमें महाकवि ने पूरी सावधानी बरती है। इसी कारण जिन छन्दों का जहाँ उसने उपयोग किया है वहाँ सौन्दर्य, माधुर्य और रस की वर्षा हो गई है। रघुवंश जैसा महाकाव्य उसने अनेक छन्दों के उपयोग से पूर्ण किया है। जिस छन्द का जिस स्थल पर उपयोग किया है वह प्रसंगानुकूल होने के कारण प्रदीप्त हो उठा है।

वही कवि (कालिदास) अपने मनोहारी काव्य मेघदूत में केवल मंदाक्रांता का ही प्रयोग करता है, और उस छन्द में मेघदूत माधुर्य से ओत-प्रोत बन जाता है। मेघदत में मंदाक्रांता के प्रयोग का विशेष कारण है। इस काव्य का आरम्भ वर्षा-ऋतु से होता है। वर्षा में मेघ के आगम से साधारण प्रवासी का पथ भी आर्द्र हो जाता है और उसकी गति मन्थर हो जाती है। महाकवि क्षेमेन्द्र ने अपने 'सुवृत्ततिलक' में बतलाया है—

'प्रावृटप्रवासव्यसने मंदाक्रांता विराजते।'

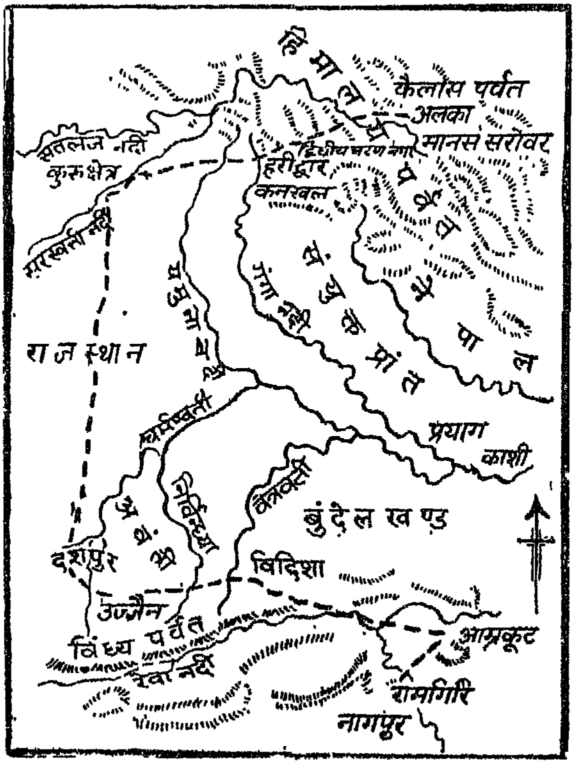
वर्षा और प्रवास में 'मंदाक्रांता' ही शोभा देती है। इसी प्रकार वृत्त रत्नाकर में कहा है—

नानाश्लेषप्रकरणचणा चारुवर्णोज्ज्वलांगां।
नानाभाव्याकलितरसिकश्रेणि कांतान्तरंगा॥
मुग्धस्निग्धैर्मृदुमृदुपदैः क्रीडमाना पुरस्ता-
न्मन्दाक्रांता भवति कविताकामिनी कौतुकाय।

(पृ० ६७)

'मंदाक्रांता' को मृदु-मृदु चरणों से क्रीड़ा करती हुई, मुग्ध और स्निग्ध मन्थर-गतिवाली कहा गया है। जब कवि वर्षाकाल के उपयुक्त मंदाक्रांता (मंद-मंद चरणन्यास) छन्द का प्रयोग करता है (जिसका हेतु ही मृदु-मृदु गति में चलना है) तब कवि का वर्षाकालीन दूत—'मेघ' भी उसी प्रकार धीरे-धीरे पथ-संचार कर सन्देश ले जाने का कार्य करता है। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि बच्चनजी ने एक जगह (अनिरुद्ध शास्त्री के मेघदूत के अनुवाद की भूमिका में) यह शंका उठाई है कि जब यक्ष विरही है, उसको अपनी विरहिणी प्रिया के निकट सन्देश शीघ्र पहुँचाना है, तब महाकवि उसके सन्देशवाहक को पथ के प्रमुख स्थानों की सैर कराने, और पथ से वक्र मार्ग होते हुए भी उज्जैन (या—दशपुर) तक पहुँचाने का प्रयास करता है, यह सुसंगत नहीं लगता। यदि बच्चनजी वर्षाकालीन दूत मेघ का विचार करने और कवि के प्रयुक्त मन्द-प्राक्रमण करने वाले—मंदाक्रांता-छन्द का महत्त्व समझ लेते तो शायद उनकी शंका शमन हो जाती। इसके अतिरिक्त भी इसमें और एक विशिष्ट कारण भी है, और वह सर्वथा विज्ञानानुमोदित भी है। महाकवि ने मेघदूत के लिए जिस समय अपने नायक-यक्ष का सन्देशवाहक मेघ को चुना है—तब उन्होंने स्पष्ट बतलाया है कि—यह दूत 'धूम, ज्योति, सलिल और मरुत' का समन्वय गगन-संचारी मेघ (बादल है। और उसका उद्गम रामगिरि (नागपुर के रामटेक) से है, जो दक्षिण के 'मानसून' का आरम्भ-स्थान है। उसका जो पथ, आज से दो हजार वर्ष पूर्व तथ्यवादी कवि कालिदास ने सूचित किया है, वही आज का मानसून-शास्त्री स्वीकार करता है। वह दक्षिण से उठकर उत्तर हिमालय तक जाता है। परन्तु यह जानने की बात है कि उसी मानसून (मेघ) का एक अंश जो केवल ४० इंच वर्षा की क्षमता रखता है, वह मालव प्रदेश के मन्दसौर (दशपुर) तक ४० इंच जल सिंचित कर पुनः उत्तरापथ-गामी मानसून से जाकर मिल जाता है। आज भी यह सत्य तथ्य बना हुआ है। मालवे में मानसून द्वारा ४० इंच ही जल मिलता है। महाकवि ने ठीक उसी तथ्य को मेघदूत द्वारा प्रकट किया है, और उत्तरापथगामी मेघ को विदिशा से वक्रमार्ग द्वारा उज्जैन, मन्दसौर (दशपुर) तक भेजकर पुनः अलका तक पहुँचाया है। इस

वैज्ञानिक-सत्य की रक्षा करके महाकवि ने मेघ की मालव-यात्रा भी करवा दी है, और वर्षाकालीन-पथ के औचित्य की भी रक्षा करदी है। यही नहीं, उसने अपने प्रयुक्त-छन्द 'मन्दाक्रांता' की सार्थकता भी सिद्ध कर दी है। यदि महाकवि को यक्ष की विरह-व्यथा का ही वर्णन अपेक्षित होता तो मेघदूत का विशेष भाग उसी पर अंकित



मेघ-मार्ग (मेघदूत)

होता। परन्तु कवि को मेघ का मार्ग, और प्रवास का भूगोल, एवं प्रकृति-पर्यवेक्षण ही अधिक वर्णन करना था। यही साबित करता है कि वह वर्षा के दूत मेघ का पथ-निर्देश करना चाहता है। यही अभीप्सित है। संस्कृत साहित्य में शायद ही ऐसा कोई अन्य कवि हो सकता है जिसने अपने काव्य में विषय, प्रसंग, वस्तु-स्थल-काल-भूगोल आदि में वर्ण्य-विषय का अनुसरण करते हुए सत्य-तथ्य एवं वैज्ञानिकता का इतना अधिक सावधानीपूर्वक ध्यान रखा हो। वस्तुतः 'मेघदूत' मानसून का यात्रा-वर्णन है। उसे कवि ने दौत्य कर्म करने को प्रयुक्त कर कितनी सुन्दरता के साथ वर्षा-विरह

की स्वाभाविकता से जुटा दिया है। कवि का प्रकृति-ज्ञान और भौगोलिक-ज्ञान जितना उत्कृष्ट है, उतना ही अद्भुत रसमय बना देने का सामर्थ्य भी है। कल्पना की मौलिकता उसकी प्रतिभा की सहचरी है। मेघदूत के अनुकूल मन्दाक्रांता पर उसका अधिकार देखकर क्षेमेन्द्र ने उचित ही कहा है:—

'सुवशा कालिदासस्य मन्दाक्रांता प्रवल्गति।'

कालिदास ने मेघदूत में मेघ का जो मार्ग सूचित किया है, वह स्थूल रूप से इस प्रकार है:—

रामगिरि—(नागपुर) के उत्तर में निकटवर्ती 'रामटेक'।

माल—ऊँची भूमि, अमरकंटक पर्वत (आम्रकूट)।

विन्ध्य—रेवा (नर्मदा नदी)।

दशार्ण—(पूर्व-मालव) वेत्रवती (बेतवा) नदी का भाग।

विदिशा (भेलसा) यहाँ से मालवे के लिए प्रवास-मार्ग (वक्रः पंथाः।

नीचगिरि—(भेलसा के निकट)।

वन नदी—(विन्ध्याद्रि से निकलने वाली नदियाँ)।

उज्जैन—(वर्तमान उज्जैन)।

निर्विन्ध्या—(पार्वती नदी) विन्ध्या से निर्गत।

महाकाल—(उज्जैन का प्रसिद्ध ज्योतिर्लिंग)।

शिप्रा—उज्जैन की पवित्र नदी।

गंभीरा नदी—मालव की छोटी नदी।

देवगिरि (देवडूँगरी)—एक छोटी पहाड़ी।

चर्मण्वती (दशपुर) चम्बल—दशपुर के रंतिदेव की कीर्ति

ब्रह्मावर्त—(सरस्वती और दृषद्वती तथा देवनदी का मध्यवर्ती स्थान)।

सरस्वती नदी—(आगे बालुकामय प्रदेश में गुप्त)।

कनखल—(हरिद्वार के निकट)।

जाह्नवी—(गंगा नदी)।

चरणन्यास—(हरिद्वार—हर की पैड़ी)।

क्रौंचरन्ध्र—हिमालय के पथ में।

कैलाश—हिम पर्वत।

अलका—पुराण प्रसिद्ध कुबेर की राजधानी।

मानसरोवर—हिमालय पर।

मेघ का यह मार्ग कालिदास ने सन्देश पहुंचाने के लिए सूचित किया है। परन्तु यही मार्ग दक्षिण से चलने वाले मानसून का भी है, जिसे आज भी मानसून-पथ के रूप में वैज्ञानिक स्वीकार करते हैं। इसी पथ से वर्षा के नायक 'मेघदूत' ने 'मंदाक्रांता' के रथ पर चढ़कर मनोहारी प्रवास किया है। इसी मंदाक्रांता द्वारा कवि ने शाकुंतल में भी काव्य-विहार किया है। रघुवंश और कुमारसंभव में भी इसका प्रयोग कर सौंदर्य-सृष्टि की है। किन्तु मेघदूत की मंदाक्रांता अपनी विशेषता लेकर अमर बन गई है। इसमें कवि का वाग्वैभव है। मेघदूत में उत्कृष्ट कल्पना-वैभव, कलापूर्ण सृजन-सौष्टव, भावों की भव्यता, अलंकारों की मनोहारिता, सौंदर्य-सृष्टि की मधुरिमा अद्वितीय, अनुपम और अद्भुत है। उसकी मंदाक्रांता ने मेघ को लेकर दक्षिण से उत्तरापथ तक वर्षाकालीन प्रवास द्वारा पथप्रिया को सन्देश देने का सफल दौत्य-कार्य किया है। परन्तु मेघदूत-काव्य के इस सौन्दर्य और सौरभ को लेकर कालिदास की अमर-मंदाक्रांता ने मृदु-मन्थर गति से सारे विश्व का सफल सांस्कृतिक-प्रवास किया है, और यशोविस्तार कर अपनी जन्मभूमि का सार्वभौमिक गौरव बढ़ाया है।

कालिदास और कल्पवृक्ष

भारतवर्ष में वैसे तो अनेक वृक्षों को पूजनीय माना और उपयोगी समझा जाता है। वनौषधियों के आधार पर आयुर्विज्ञान में वृक्ष लताओं के ऊपर अनेक कथाएं प्रचलित हैं। बोधिवृक्ष का तो स्वतंत्र इतिहास भी है। परन्तु जिस 'कल्पवृक्ष', और कल्पलता' (अथवा-कल्पवल्ली) की महत्ता को हम पुराणों, काव्य-ग्रंथों और शास्त्रों में बहुविधि देखते और सुनते हैं, उसके अस्तित्व के विषय में कोई आशंका न होते हुए भी उसका प्रत्यक्ष-दर्शन नहीं किया गया है। किसी भी उदार देव या नर को हम सहज ही कल्पवृक्ष की उपमा से स्मरण करते हैं। किसी का मनोरथ पूर्ण करनेवाला 'कल्पवृक्ष' की संज्ञा से ज्ञापित हो जाता है। बहुधा कल्पवृक्ष को 'स्वर्गीय' विषय समझ कर हम उसका समादर करते हैं, स्मरण करते हैं। पुराण-ग्रंथों में कल्पवृक्ष, कामधेनु और कल्पलता की इतनी अधिक कथाएँ मिलती है कि उसके अस्तित्व में संदेह करना भी कठिन होता है। पुराण और काव्य-ग्रंथों के वर्णनों को यदि हम कल्पना-विहार ही समझ लें तो कला-शिल्पों में भी कल्पवृक्ष का अंकन कम उपलब्ध नहीं होता।

महाकवि कालिदास जैसे तथ्यवादी कवि ने भी कल्पवृक्ष और कल्पनाओं के प्रति अपना विशेष आकर्षण प्रकट किया है। इतना ही नहीं, ये कला के प्रतीक भी बन गए हैं। अनेक मुंडेरे कलापूर्ण कल्पलता से आच्छादित और उत्कीर्ण हुए हैं जिनकी पल्लव-सुमनावलियों से, बीच-बीच में वसना-भरणों की मोहक छटा परिलक्षित होती है। साँची के स्तूप और शुंग-सत्ता के तत्कालीन-शिल्पियों ने उक्त मुँडेरों से प्रेरित होकर भरहुत के शिल्पांकन को सजाया सँवारा है। जिस विदिशा (भेलसा) का कालिदास ने मनोहारी वर्णन किया है, वहाँ के गज-दन्त के कमनीय कारीगरों ने साँची के प्रवेशद्वार को कल्पलता से सुसज्जित किया है। आरम्भिक शिल्प-रचना के समय कल्पवृक्ष की शाखाओं में प्रायः क्षीम (रेशमी वस्त्र) मृदुल दुकूल, हार, अंगुलीयक, कुण्डल और इतर आभरणों की योजना हुई। इसका स्पष्ट उल्लेख अभिज्ञान-शाकुन्तल में मिलता है।

अलका नगरी की रमणियों के लिए कल्पवृक्ष, एवं कल्पलता शृंगारालय बन गए हैं। मेघदूत में महाकवि ने सुन्दरियों के सौन्दर्य-संवर्धन के लिए समस्त आवश्यक-

उपकरणों को कल्पवृक्ष द्वारा प्रदत्त बतलाया है—यथा—

वासश्चित्रं मधु नयनयोर्विभ्रमादेशदक्षं
पुष्पोद्भेदं सहकिसलयैर्भूषणानां विकल्पान ॥
लाक्षारागं चरणकमलन्यासयोग्यं च यस्या-
मेकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः

(उत्तरमेघ-१२)

अर्थात्—अलका नगरी में पहनने योग्य रंगीन कपड़े, नयनों में चंचलता लाने के लिए चटक-मधु, शरीर-सज्जा के लिए पुष्प-पल्लव एवं अलंकार, चरणों के रँगने के लिए लाक्षा-राग (महावर) यह सब प्रसाधन कल्पवृक्ष ही प्रदान कर देता है।

जिस प्रकार भरहुत के मुँडेर पर कुरबक दलों, फूलों, आभूषणों एवं रेशमी वस्त्रों सहित कल्पवल्ली का ई० स० पूर्व दूसरी सती शुंग-काल में शिल्पांकन हुआ है, उसी प्रकार कंठी, हार, कर्णवेष्टन, कनक-कमल, दन्त-पत्र, आदि अलंकारों सहित दूसरा अंकन भी भरहुत में ही (उसी काल) प्राप्त होता है। एक स्थान पर वही ऐरावत के मुख से कल्पवल्ली को प्रसूत बतलाया गया है। उसमें मुक्तायष्टि, मंजीर और सीकों में लटकते हुए मधुभाण्ड का अंकन है।

कल्पवृक्ष का अंकन बोधि गया में (शुंग काल ई० पू०) शाखा के निकट से एक हाथ बाहर निकाल कर आ जा सके, ऐसे, जल प्रदान करते हुए किया गया है। इसी प्रकार रमणियों की सौन्दर्यमयी-दृष्टि को भ्रू-विलास में कौशल प्रदान करनेवाली सुरा का निर्माण भी कल्पलता से करवाया गया है। (मधुनयनयोर्विभ्रमादेशदक्षम्)

अनेक प्रकार के फूल सर्वत्र सुलभ होते हैं। किन्तु कल्पवृक्ष को सभी प्रकार के फूलों का भाण्डार बतलाया गया है। शिल्पकला में शुंगकाल में यह अंकन भी भरहुत में हुआ है।

रमणियों के समस्त शृंगार, वेणियों के लिए कुरणिक, भाल के निकट की कुंचित अलकावलि के लिए कुंद, क्रीड़ा के लिए करों में उद्दीपक-कमल, आनन-श्री के लिए लोध्ररज, कर्णों के लिए शिरीष, सीमंत के लिए नीप (कदम्ब) ये सभी कल्पवृक्ष ही प्रदान करता है। यथा—

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धम् ।
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः ॥
चूडापाशे नवकुरवकं चारुकर्णे शिरीषं,
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ॥

(उत्तरमेघ)

चरणों के अनुरंजन के योग्य लाक्षा (महावर) जो भगवान् शिव द्वारा भस्म किए गए कामतरु के प्रथम किसलय के समान प्रतीत होती है, उसे भी कवियों ने इसी कल्पद्रुम से उत्पन्न बतलाया है।

प्रथमामिव प्रसूतिं, हरदग्धस्य मनोभव-द्रुमस्य।

(मालविका—अंक ३)

इस प्रकार काव्य, पुराण, कला, शिल्प में जिस कल्पलता और कल्पद्रुम का मनोहारी और भव्य वर्णन प्राप्त होता है, चित्रांकनों में आकृति भी कल्पित मिलती है। वह कल्पवृक्ष, कौन, और कहाँ होता है, या होता ही नहीं—इस पर शायद विचारकों का ध्यान नहीं गया है। यद्यपि वह अदृष्ट रहा है, तथापि वह इतना लोकप्रिय बना चला आ रहा है कि शिल्प ही नहीं, हृदय में भी अंकित होकर रूढ़ हो गया है। उसके अस्तित्व में आशंका करने का भी अवसर नहीं समझा जा सका। कालिदास जैसे सर्वथा तथ्यवादी-कवि ने इतनी अधिक बार उसकी श्री-शोभा-शृंगार का मनोहारी वर्णन किया किन्तु उसने भी यह कहीं संदेह नहीं किया कि यह काल्पनिक द्रुम है। अवश्य एक स्थान पर उत्तर-मेघ में कल्पवृक्ष से एक 'फल' उत्पन्न करवाया है। उसका नाम 'रति-फल' कहा है।

'रतिफलं कल्पवृक्षप्रसूतम्'

अलकावासी यक्ष लोग कल्पवृक्ष से उत्पन्न मधुरस का पान करते थे। उसे रति-फल कहा गया है। इससे अवश्य कुछ संकेत मिलने का अवसर प्राप्त हो गया है। यह 'रतिफल' अवश्य ही रसिक-विलासियों के लिए कोई मादक पेय होना चाहिए। 'मदिरार्णव'-ग्रंथ में रतिफल-क्वाथ का प्रयोग मिलता है। उसमें आदि वृक्ष-वनौषधियों के मिश्रण से यह निर्मित बतलाया है जैसे—

ताल-क्षीरसितामृतामलगडोन्मत्तास्थिकालक्रिया।
दर्वेन्द्रिद्रुमगोरटेक्षुकदलीगुग्गुलुप्रसूनैर्युतम्।
इत्थं चेन्मधुपुष्पभंग्युपचितं पुष्पद्रुमूलावृतम्।
क्वाथं नः स्मरदीपनं रतिफलाख्यं स्वादु शीतं मधु।

उक्त श्लोक से स्पष्ट प्रतीत होता है कि अनेक प्रकार की वस्तु वनौषधियों से यह क्वाथ निर्मित होता था और इसे 'स्मरदीपन', सुस्वादु, शीतल और मधु समझा जाता था। अलका-निवासी धनिक यक्ष लोग प्रायः विलासी तो रहे ही हैं। पुराणों में

ययाति की कथा भी अलका से सम्बन्धित है कि वह लड़के से यौवन प्राप्त कर विलास-रस के लिए अलका गये थे। फिर अलका का जो वर्णन जैन साहित्य मे उपलब्ध होता है, उससे भी यही ज्ञात होता है कि वहाँ ९९ लाख की धन-राशि हो जाने पर भी निवास प्राप्त होना असंभव था। कोटि से कम की धनराशि के स्वामी को अलका-प्रवेश निषिद्ध था। (यस्यबारके नवनवतिलक्षधनपतिभिरप्राप्तनिवासे) वहाँ सात-मंजिलों के भवनों का आवास था। ऐसी विलासमयी भूमि पर 'रतिफल' सेवन होना असंभव नही। उसी मादकता में विलासी यक्ष अपने कर्त्तव्य से प्रमादवश शापित-निर्वासित हुआ था। वहाँ कल्पवृक्ष से रतिफल प्रसूत (रतिफल कल्पवृक्ष-प्रसून) हो तो आश्चर्य नही। किन्तु यह रतिफल विविध वृक्षो मे वस्तुओ से निर्मित होते हुए भी कालिदास के द्वारा—

'कल्पवृक्ष प्रसूतम'

कहा जाता है। इससे स्पष्ट है कि यह कोई स्वतंत्र वृक्ष नही रहा है। तथापि इसका महत्त्व न जाने कहाँ से आज तक माना ही जा रहा है। मनोरथ पूर्ति के लिए इसका सदैव स्मरण होता रहेगा।

काव्य-कलाधर का रस-विलास !

कवि-कुल-कलाधर कालिदास की काव्य-माधुरी का पान करनेवाले, सरस-मुग्ध-मधुप-वृन्दों को यह बताने की आवश्यकता नहीं कि कविवर किस कोटि के रसिक थे ! उनके काव्य-नाटकों की प्रत्येक पंक्ति से रस-निर्झरिणी निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। किसी विद्वान् ने उचित ही कहा है कि—'शिक्षा समयेपि मुदे 'रतिलीला' कालिदासोक्ति"। कालिदास को छोड़कर संस्कृत-साहित्य में ऐसा कोई भी कवि नहीं है कि जिसने शृंगार-रस-विलास का इतना मधुरतम वर्णन करते हुए भी विकृत नहीं होने दिया है। कालिदास की कविता-बाला कामरूप की जादूगरनी है। वह अपने रसिकों को 'मक्खी' बनाकर कविता की पंक्ति पर आकर्षित कर चिपकाए रखती है। रसिक उसमें अतृप्त ही बना हुआ 'और दिए जा' की रट लगाए, उसीके द्वार पर, कर में भिक्षा-पात्र ले रस-दान के लिए प्रार्थी बना ही रहता है ! चाहे प्रचण्ड सूर्य-किरणों से आग की तरह बरसनेवाली कड़ी धूप हो, घनघोर गर्जना कर चपला चाहे चम-चम चमकती हो, मेघ अजस्र धारा-वर्षण कर रहे हों, अथवा जड़ बना देनेवाली शीत क्यों न पड़ती हो, कालिदास की 'कवितादेवी' के द्वार का भावुक भिक्षुक भूलकर भी इधर-उधर भटकता नहीं। क्योंकि बकौल 'शाकुन्तल' के रस-मय प्रदेश की 'ग्रीष्म' भी 'उपभोगक्षम' ही होती है ! 'ऋतुसंहार' के शब्दो में जिसका ग्रीष्म "दिनान्त रम्योऽभ्युपशांत मन्मथो निदाघकालः" रहता है, जिसके पथ की वर्षाऋतु भी 'कामिजनप्रिय' ही रहती है, और सौदामिनी भी जिस कवि के आदेश को मानकर केवल अभिसारिकाओं के पथ की 'सर्चलाइट' बनकर ही चमकती हो, गर्जन-तर्जन कर प्रिय जनों के हृदयों को 'भयग्रस्त' न करती हो, और जिसकी गली में शरद् भी जिस समय जाती है, तब नव-वधू की तरह लावण्य-लतिका बन, रूपराशि छिटकाती हुई, निकल जाती है 'प्राप्ता शरन्नव वधूरिव रूपरम्या", तब बेचारे शिशिर की क्या बिसात कि वह किसी को त्रास देने का साहस कर सके ? वह भी झख मारकर, कविवर की अनुज्ञा से 'प्रमदाजन-प्रिय' बनकर ही सहज सटक जाता है। फिर उधर ऋतुराज-वसंत की सवारी आती है। उसके स्वागत के साज तो, इस कवि के प्रदेश में, ऐसे-ऐसे सजाए जाते हैं कि किसी सम्राट् को भी नसीब न हों। "चारुतरं वसंते" में सारी सुन्दरता समाविष्ट होकर सिमिट रहती है ! इतनी विलासिता के विपुलतम साधनों के सुलभ रहते हुए भी, स्वयं वह काव्य-कलाकार जल-कमल की तरह निर्विकार ही बना रहता है। और

समस्त सौन्दर्य का सर्जक बन आसक्तिरहित हो सुखानुभव करता रहता है,—"असक्तः सुख मन्वभूत्" यही तो उसकी विचित्र विशेषता है ! जादूगर की तरह सारी सृष्टि का निर्माण कर देता है, जगत् को अपनी मोहिनी में फंसाकर आप इस तरह अलग जाकर खड़ा हो जाता है कि जैसे उसकी इस 'माया' से कोई ममता नहीं,-मोह नहीं ! कवि के 'दिलीप' ही को देखिये न । वह समस्त वैभव का विराट् महल खड़ा करके भी उसमें आकृष्ट नहीं होता : 'अनाकृष्टस्य विषयैर्विद्यानां पारदृश्वनः'। कालिदास का अपने पात्रों पर वह काबू है कि जब चाहे वह उन्हें जरा ढीला छोड़कर सूखे प्रदेश में भी रस-वर्षण करा देता है, और पुनः ऐसे कसकर बाँध देता है कि, उस रस-सागर में प्रवाहित हो, कहीं 'नाश' को वह न्यौता न दे लें । दुष्यन्त को शकुन्तला के प्रति मुग्ध बना, ज्योंही वह अपने रसिकवृन्दों को 'मोहक प्रदेश' में लेजाकर खड़ा कर देता है, और एक विचित्र माधुरी-माया में तन्मय बना देता है, त्योंही तुरन्त उसी (दुष्यन्त) को विस्मृति के पाश में जकड़, 'संयम' की सीढ़ी पर उतारकर खड़ा कर देता है । इसी प्रकार रघुवंशियों की पवित्रता का चित्र भी है । अर्धनिशा के तिमिरावरण को चीरती हुई, जब स्वयं कुशावती-नगरी, परम रूपवती रमणी का रूप धर, राज-प्रासाद में, राजशय्या के निकट पहुँचती है, तब कुशराजा स्वयं उसे सावधान कर देता है कि 'खबरदार ! रघुवंश की मर्यादा रखकर ही कुछ कहना, इतनी रात्रि को ऐसे अन्दर नहीं आया जाता !' तब कवि का वह निलिप्त रस-विलास-वैभव-वर्णन, वर्त्तमान युग के लिए एक 'पहेली' बन जाये तो आश्चर्य नहीं । विरही यक्ष की प्रियतमा की परमासक्ति का सुन्दरतम वर्णन करनेवाला, तथा उर्वशी के उत्तान-शृंगार की सुभग-सृष्टि से सौंदर्य-सागर में रस-स्नात करा देनेवाला कवि 'रतिलीला कालिदासोक्ति' को सार्थक करते हुए भी जब अतीतकालीन भारतीय आदर्श की मर्यादा को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए, 'वाणी' पर भी विवेक की 'धारा' लगाकर शासनाज्ञा प्रचारित करता है कि सावधान—"अनिर्वचनीयं परकलत्रम् !" (पर-स्त्रियों के विषय में कुछ भी न कहा जाए !) तब कवि के उस 'शृंगार' की 'शोभा' भी कितनी भली—कैसी पुनीत—मालूम देने लगती है, जैसे गौरवोन्नत सौध-शिखर ने मस्तक पर हिम-मय-धवल मुकुट धारण किया है, और शोभाधाम बन गया है ! सोने में सुगंध भर गई है ! चार चाँद जड़ दिए गए हैं !

कविवर की नवनीत-कोमलांगी-कविता-बाला, अपने हृदय-पटल पर, लावण्य-लतिका एवं अनिन्द्य-सुन्दरी शकुन्तला, सुदक्षिणा, इंदुमति, रति, यक्षिणी, तथा उर्वशी आदि स्वीय-शोभा-भार-विनम्र ललनाओं का उदात्त-चरित्र-चित्र अंकित कर, उसपर आदर्श का अंबर परिधान करा, शील और मर्यादा की मान-भूमि पर इन्हें

उपस्थित कर देती हैं। काव्य-रूप में भी उनके दर्शन करके आदर से हमारा सिर सहसा उनके सन्मुख अवनत हो जाता है।

कवि की ये काव्य सुन्दरियाँ अपने भारतीय आदर्श एवं मर्यादा से च्युत नहीं होतीं, यही उनकी विशेषता है। इस पर भी वे इतनी मृणाल-मृदुल हैं, विविध-शृंगार से सज्जित है कि आधुनिक 'पेरिस' की शृंगार-भारावनत कृत्रिम सौंदर्य-साधिकाएँ भी उनके सहज-सुलभ शृंगार के समक्ष नगण्य ही लगती हैं। दो हजार वर्ष पूर्व भी वर्त्तमानयुगीन शोभा-शृंगार को मात कर देनेवाली शृंगार-साहित्य से समन्वित, कालिदास की कुल-ललनाएँ रहती थीं।

यक्ष की अनिन्द्य सुन्दरी प्रियतमा, भारत के तत्कालीन पेरिस–अलका नगरी–में, जिसके प्रासाद (पैलेस) सात-सात मंजिल से कम नहीं थे, रहकर केशकलापों में लवेण्डरों को लजानेवाली सुगंधित धूप भरकर, नागिन से बल खाते हुए जूड़ों को सुखाया करती थीं, और अनेकों के मन-मिलिन्दों को (अरमानों के साथ समेटकर) बाँध लिया करती थीं (जालोद्‌गीर्णैरुपचित वपुः केशसंस्कार धूपैः)। इसी प्रकार अपने सुन्दर-गौर मृदुल-चरण-कमलों पर सुन्दरता के साथ सजाकर महावर लगाना भी कवि-कालीन वनिताएँ खूब जानती थीं (ललित वनिता पादरागाङ्किितेषु)। उनके अधरों पर आज के पश्चिमी विषैले लिपस्टिक नहीं, ताम्बूल रस के अतिरिक्त अरुणाभ-अधर भी किसी सरस-राग से रंजित किये जाते थे (विसृष्ट रागादधरान्निर्वतितः)। स्तन-युगलों पर भी कुछ अनुलेपन किया जाता था (स्तनाङ्गरागा रुणिताश्च)।

आज की रंगोनियों की तरह, वल्कल-वसन-विभूषित आश्रम-बालाएँ जो स्वाभाविक सौन्दर्य से ही मोहनी रखती थीं, वे कालिदास की काव्य-कामिनियाँ 'चीनांशुक'—बढ़िया रेशमी वस्त्रों–को परिधान कर तितलियाँ भी बनी रहती थीं। उन अलकों से लेकर चरण तक के शृंगार तथा अलंकाराभरणों का जैसा सुन्दर यथा-स्थान वर्णन है, वह विलासिता की विशेषता रखनेवाले इस युग के 'वैभव' को भी विस्मय में डाले बिना नहीं रहता। वन-विलास उद्यान-परम्परा, फव्वारों की शोभा (विचित्रं जलयंत्र मन्दिरम्,-यंत्र धारागृह), उस काल की सभ्यता के विकसित रूप के तथा कवि की रंगीली तबीयत के प्रदर्शक ही हैं। आज रईसों के प्रासादों में, ग्रीष्म की रवि-किरणों से झुलसा हुआ समीर, चाहे खश की खुश्बू को अंचल में बांधकर भींगी बिल्ली की तरह, जल-जालियों के कंटकाकीर्ण पथ से गुजरकर, आराम पाने मसनदों पर चुपके चला जाता हो, पर कविवर के रईसजादों के घर चंदन की सुगंधित रज को लगाकर स्नान से शुचिर्भूत हुए बिना वह सुखद-समीरण अंतःप्रवेश नहीं कर पाता था (सचंदनांबुव्यजनोद्भवानिलः–अर्थात् चन्दन-मिश्रित जल से सुरभित-वायु पंखों द्वारा

उत्पन्न होती थी) । और शादी-ब्याह के विधानों की वे बातें जाने दीजिए, जो ठेठ वेद-काल से आजतक, अनेक अंशों में समानता रखती हैं; परन्तु महाकवि के पात्र ऐसे लगते हैं, जैसे कोई कॉलेज-युनिवर्सिटी से निकलकर, नवयुग में ढले हुए हों । वे 'कोर्टशिप' करते हैं स्वयं कन्याएँ, पुरुषों को पसंद करती हैं, पुरुष कन्या को, और इस बात से, पुरातनतम युग के शहर की 'समझ' से दूर रहनेवाले आश्रमवासी योगीजन भी नाराजी जाहिर नहीं करते, बल्कि उनके परस्पर 'मनोनुकूल' चुनाव को स्वीकृति की मुहर लगाकर 'सही' करार दे देते हैं । दो हजार साल पहले की यह हालत है—जी हाँ ! जरा आप इसे आधुनिक युग से टकराकर देखिये तो ! यही क्यों ? 'केमरों' की कल्पना भी अकल्पनीय थी, तब कविवर का अग्निमित्र (पात्र) कन्या का 'चित्र' (प्रतिकृति रचनाभ्य:) देखकर पसन्दगी की बात करता था ! बताइए आज के पुरोगामी-युग में भी लाखों लोग ऐसे हैं, जो लड़की का 'फोटो' निकलवाना पुरानी प्रथा-मर्यादा के 'मूल' में कुठाराघात समझते हैं ! तब आप दो हजार साल पहलेवाले युग में, प्रतिकृति 'फोटो', के जर्ये वधू-परीक्षा की बात को किस 'युग' की प्रथा में शुमार करेंगे ? यह है कालिदास की कला, सूक्ष्मावलोकन क्षमता, और अतीत सुसंस्कृत-कला की सुषमा !

परन्तु ऐसी किन-किन बातों को कहाँ तक गिनाया जाय ? महाकवि की प्रौढ़ प्रतिभा के पावन-प्रसाद को प्राप्त कर, वैभव-रस-विलास के विपुलतम (वर्णनात्मक) साधनों से, कान्त-कामिनी कविता ने अपना कुसुम-कोमल-कलेवर नख-शिख तक सजाया है, इसपर भी वह वासना की विकृत-विषैली-वायु से दूर खड़ी रहकर ही 'असक्त: सुखमन्वभूत्' आसक्तिरहित सुखानुभाव करती रहती रही है ।

मेघदूत

(दिवंगत अमर महाकवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर)

कविवर कब कौन विस्मृत वर्ष में,
किस पुण्य आषाढ़ के प्रथम दिवस
रचा था यह मेघदूत। मेघमन्द्र श्लोकों ने
विश्व के सकल विरहीजनों का शोक,
रखा है अपने अँधियारे स्तर-स्तर के
सघन संगीत में करके पुंजीभूत।

उस दिन उस उज्जयिनी के प्रासाद-शिखर पर
कैसी थी घनघटा, विद्युत-उत्सव,
उद्दाम पवन-वेग, गुरु-गुरु रव।
गंभीर निर्घोष ने उस मेघ-संघर्ष के
जगा दिया था सहस्रों वर्षों का
अन्तर्गूढ़ वाष्पाकुल विच्छेद-क्रन्दन
एक दिन। छिन्न कर काल का बन्धन
उस दिन झर पड़ा था अविरल—
चिर दिवस का मानों अश्रुजल—
आर्द्र कर तुम्हारी उदार श्लोक-राशि को।

उस दिन किस जगत के जानेवाले प्रवासी ने
जोड़ दोनों हाथ मेघ सम्मुख, शून्य में उठाकर सिर
गाई थी सम-स्वर में विरह की गाथा,
प्रिया के घर की ओर दृष्टि था लगाये वह,
बन्धनविहीन नव मेघ के पंखों पर करके आसीन
भेजना चाहता था प्रेम की वार्त्ता अश्रु उच्छ्वास भरी।

—दूर के वातायन में जहाँ
विरहिणी सोई थी भूतल शयन पर,

बिखरे केश, म्लान वेश, सजल नयनवाली,
उन सबके गान तुम्हारे संगीत में
किसने हैं अर्पित किये, कवि, दिवस में, निशीथ में,
देश-देशान्तर में खोजते हैं जो विरहिणी प्रिया को
श्रावण में जाह्नवी बहती है,
बाँधकर दिग-दिगन्त वारिधारा,
महासमुद्र में जाकर होती है दिशाहारा।
पाषाण श्रृंखला में बन्दी जैसे हिमाचल
आषाढ़ के अनन्त शून्य में देखकर मेघदूत
स्वाधीन गगनचारी, कातर-निश्वासी,
सहस्रों कन्दराओं में था जो वाष्प राशि-राशि।
छोड़ा वह गगन की ओर, उड़ चला वहाँ से छूट
उद्धत कामना-समान, शिखर से उठकर
सबल से जा मिला, अन्त में होकर एकाकार—
समस्त गगन-तल पर करके अधिकार।

उस दिन के बाद हैं कितनी सौ बार
प्रथम दिवस स्निग्ध नव वर्षा के।
प्रत्येक वर्षा देती गई नवीन जीवन
तुम्हारे काव्य पर करके वर्षण
नव वृष्टि-वारिधारा, करके विस्तार
नवघन स्निग्धच्छाया, करके संचार
नव-नव प्रतिध्वनि जलद मन्द्र की,
स्फीत कर स्रोतावेग तुम्हारे छन्द—
वर्षा तरंगिणि समान।

कितने ही काल से—
कितने संगीहीन जन, प्रियाहीन घर में,
वृष्टिक्लांत बहुदीर्घ लुप्त-तारा-शशिवाली—
आषाढ़ संध्या में—
बैठकर क्षीण दीपालोक में—
वही छन्द मन्द-मन्द करते हैं उच्चारण,
होकर निमग्न करते हैं अपना विजन-वेदन।
उन सबका कण्ठ-स्वर आरहा है –

कानों पर मेरे, समुद्र की तरंगों की—
कल-ध्वनि के समान, तुम्हारे इस काव्य से।

भारत के पूर्व छोर पर
बैठा हूँ मैं उसी श्याम वंगदेश में,
जहाँ जयदेव कवि ने किसी वर्षा के दिन
देखी थी दिगन्त तमाल विपिन में—
श्याम छाया पूर्ण मेघ-मेदुर अम्बर।

आज दिवस अँधियारा, वृष्टि झर-झर,
दुरन्त पवन आर्त्त, आक्रमण से उसके—
अरण्य उद्दण्ड बाहु करता है हाहाकार।
अन्धकाररुद्ध गृह में अकेला बैठकर
पढ़ रहा हूं मेघदूत गृह त्याग कर मन
मुक्त-गति से मेघ-पृष्ठ पर लगाए है आसन—
उड़ रहा है देश-देशान्तरों में। कहाँ है—
सानुमान आम्रकूट कहाँ बहती है—
विमल विशीर्ण-रेवा विन्ध्यापदमूल में,
उपल-व्यथित गति से, वेत्रवती-कूल पर—
परिणत-फल श्याम, जम्बूवन की छाया में—
कहाँ है दशार्ण-ग्राम लुका-सा छुपा हुआ—
प्रस्फुटित केतकी की बाड़ से घिरा हुआ,
पथ-तरु की शाखा पर कहाँ ग्राम-विहगों ने
बाँधे हैं नीड़ वर्षा के, कलरव से अपने
घेर वनस्पति को। न जाने किस नदी के तीर—
यूथी-वन विहारिणी वानगंगा फिरती है,
तप्त कपोलों के ताप से क्लान्त कर्णोत्पल—
मेघ की छाया पाकर होगये हैं विकल,
भ्रू-विलास किसीसे सीखा न नारी ने।
जनपद-वधू-जन, गगन में निहारकर—
घनघटा, ऊर्ध्व नेत्रों से देखती हैं मेघों को,
घननील छाया पड़ती है उनके सुनील नयनों में।
किस मेघ-श्याम शैल पर मुग्ध सिद्धांगना
स्निग्ध नवघन देखती है होकर उन्मना,

शिला के तल में सहसा बरस पड़ती है महाझड़,
होकर आश्चर्यचकित, भय से जड़ीभूत
सम्हालकर वसन, खोजती फिरती हैं गुहाश्रय,
कहती हैं---लगता है उड़ेंगे ये गिरि-शृंग।
कहाँ है अवन्तीपुरी, निर्विन्ध्या-तटिनी,
कहाँ क्षिप्रा नदी के नीर में देखती उज्जयिनी—
अपनी महिमच्छाया। वहाँ रात्रि के मध्य प्रहर मे
प्रणय-चांचल्य भूलकर भवन-शिखर पर
सुप्त हैं पारावत, केवल विरह से पीड़िता
रमणी निकली है, बाहर प्रेम-अभिसार को—
सूचीभेद्य अंधकार में, राजपथों पर—
क्वचित् विद्युदालोक में। कहाँ वह विराजमान
ब्रह्मावर्त्त में कुरुक्षेत्र। कहाँ वह कनखल,
जहाँ बही जन्हु-कन्या यौवन-चंचल,
करके गौरी की भृकुटि-भंगी की अवहेला,
फेनों के परिहास-छल से करती थी खेल
लगकर धूर्जटी की जटा की उज्ज्वल चन्द्र-किरणों से।

इस प्रकार मेघरूप में फिरकर देश-देश
हृदय चला तैरता उत्तरदिशि-छोर पर,
कामना की मोक्षधाम अलका के अन्दर
विरहिणी प्रियतमा जहाँ है विराजती—
सौन्दर्य की आदिसृष्टि। वहाँ कौन हमें
ले जा सकता था, छोड़कर तुमको, करके अबाधित लक्ष्मी की
विलासपुरी—अमरों के लोक में।
अनन्त वसन्तों में जहाँ नित्य पुष्पवनों में,
नित्य चन्द्रालोक में, इन्द्रनील शैल के मूल में,—
सुवर्ण-सरोज-फुल्ल सरोवर के कूल पर
मणि-हर्म्यों में असीम सम्पदा में निमग्न
रो रही है एकाकिनी विरह की वेदना।
पास जाकर खुले वातायन से देखें हम—
शय्या-प्रान्त में लीन, तनु-क्षीण शशि-रेखा—
पूर्व गगन के मूल में हो जैसे अस्तप्राय।

कवि तेरे मन्त्र से होगी आज मुक्त—
इस रुद्ध हृदय के बन्धन की वेदना।
पा लिया है विरह का स्वर्गलोक, जहाँ—
बिताती है चिर-निशि विरहिणी प्रिया
अनन्त सौन्दर्य में एकाकी जाग कर।

अभी यह खोता है। देखा चारों ओर
वर्षा है अविश्राम। घना है अन्धकार,
आई है निर्जन-निशा। प्रान्तर के छोर पर
क्रन्दन कर चलती वायु अकूल उद्देश्यहीन।
सोचता हूं अर्धरात्रि में, अनिद्र नयन,
किसने दिया यह शाप, क्यों है यह व्यवधान ?
क्यों देखकर ऊर्ध्व में रोता रुद्ध मनोरथ,
क्यों अपना प्रेम नहीं पाता है पथ—
सशरीर कौन नर गया है उस स्थान पर,
मानस-सरसी-तीर विरह का शयन जहाँ,
रविहीन मणि-दीप्त प्रदोष के देश में
जगत के नद-गिरि सबके शेष में।

—अनु० श्री वीरेन्द्रकुमार, एम० ए०



मास्को टेलीविजन पर कालिदास स्मृति-दिवस के कार्यक्रम में कमला रतलम
श्रौर मास्को स्थित हार्मोनिक की अभिनेत्री लीदिया कुजनीत्सोवा
'मेघदूत' का सम्मिलित गायन कर रही हैं।

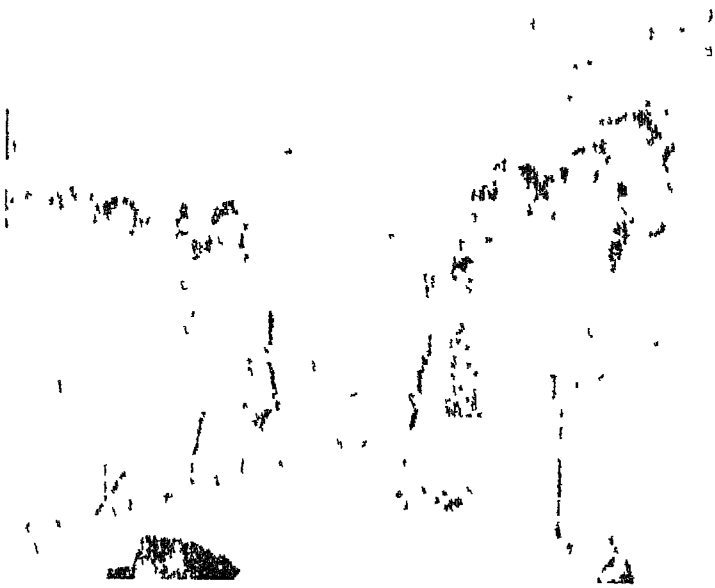
मास्को

१३-११-५६



हाउस ऑफ कालम्स में

महाकवि कालिदास-स्मृति में सम्मिलित रूसी समुदाय।



अवन्ती में कालिदास-स्मृति-महोत्सव
अजमेर के भू. पू. मुख्य मंत्री स्मृति-सुमन समर्पित कर रहे हैं।



महाकवि को
डॉ. बूलचन्दजी माला अर्पित कर रहे है।

१९५६



गत १२-१३ नवम्बर को अ. भा. कालिदास परिषद् उज्जैन की प्रेरणा से मास्को में कालिदास-स्मृति मनाई गई थी उसमें—

लेनिनग्राड विश्वविद्यालय के संस्कृत अध्यापक वी. आई. कल्याणोव, बी. ए. अपना "कालिदास भारत का महाकवि" शीर्षक लेख पढ़ रहे हैं।

मास्को
१३-११-५६



गत १२-१३ नवम्बर को अ. भा. कालिदास परिषद्, उज्जैन की प्रेरणा से मास्को में कालिदास-स्मृति मनाई गई थी उसमें—

भारत के सोवियत संघ में राजदूत श्री के. पी. एस. मेनन अपना भाषण दे रहे हैं।

मास्को
११-११-५६





कालिदास-स्मृति-दिवस
के उपलक्ष में (१९५६ में)
मास्को में प्रकाशित
डाक टिकिट



महाकवि कालिदास के स्मृति-पर्व, और स्थायी स्मारक योजना पर देश-विदेश के विचार, कार्य

कालिदास की प्रिय-भूमि उज्जयिनी में कालिदास स्मृति मंदिर की स्थापना की योजना की गई है, इसके लिए भूतपूर्व मध्यभारत शासन ने ग्वालियर नरेश द्वारा स्थापित जीवाजीराव पारमार्थिक फण्ड से १ लाख २५ हजार रुपये प्रदान किए हैं। अन्य प्रादेशिक शासनों से भी सहयोग प्राप्त होने की संभावना है। स्मृति-मंदिर महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक अंतर्राष्ट्रीय तीर्थस्थान की तरह निर्मित करने का विचार है; उसमें कालिदास-सम्बन्धी साहित्य, जो देश-प्रदेश और विदेश की समस्त भाषाओं में उपलब्ध है, संगृहीत कर, उसके अनुवाद, अनुसंधान, अध्ययन-विवेचन की व्यवस्था की जाएगी। रंगमंच का निर्माण, मेघमार्ग का मानचित्र, कालिदास के साहित्य से सम्बन्धित चित्रों का संग्रह, त्रैमासिक का प्रकाशन आदि कार्य होगा।

इसी प्रकार अखिलभारतीय कालिदास-परिषद् के अनुरोध पर भूतपूर्व मध्यप्रदेश शासन ने मेघदूत के प्रेरणा-स्थल रामगिरि (रामटेक—नागपुर) पर महाकवि की स्मृति के लिए १ लाख रुपये देना स्वीकार किया है। इसी प्रकार हिमाचल प्रदेश में शकुन्तला के निवास-स्थान कण्वाश्रम में भी उत्तरप्रदेश शासन स्मारक निर्माण कर रहा है।

सन् १९५६ में रूस में महाकवि कालिदास की पवित्र स्मृति राष्ट्रीय समारोह के साथ मनाई गई। वोकस्, पीस ग्रुप तथा प्रगतिशील लेखक-संघ, एवं विदेशों के साथ सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित करनेवाले विभाग द्वारा हाऊस ऑफ कॉलम्स में विशेष समारोह किया गया; टेलिविजन पर ४५ मिनिट तक कार्यक्रम किया गया; भाषण, गायन, अभिनय हुआ; चित्र-मय प्रदर्शन, ग्रंथों का प्रदर्शन, संस्कृत में काव्य-पाठ, रूसी अनुवाद, प्रख्यात रूसी अभिनेत्री अलीसा कोनेम द्वारा शकुंतला की आलोचना प्रस्तुत की गई। इसी समय रूस के अनेक पत्रों में व्यापक रूप से कालिदास की चर्चा हुई, और शासन ने महाकवि की स्मृति में डाक टिकिट प्रकाशित किया।

इस सम्बन्ध में रूस के सांस्कृतिक मंत्रालय के प्रमुख श्री मिखाईलोव ने पत्र लिखा था, जो इस प्रकार है:—

"मास्को, १२ जून '५५

श्रीमान् सूर्यनारायणजी व्यास,

मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं श्री कमलारत्नम् द्वारा प्राप्त आपके कालिदास के सम्बन्ध में भेजे गए पत्र के लिए आभार प्रकट करूँ।

मुझे आपको यह सूचित करते हुए प्रसन्नता होती है कि विश्वशांति-परिषद् की ओर से १९५६ में कालिदास-जयंती सम्बन्धी प्रस्ताव के महत्त्व के सम्बन्ध में हम आप से सहमत हैं। ..

आशा है, यह महान् जयन्ती मनाने से हमारे दोनों देशों की जनता की मैत्री बढ़ेगी।

चीन राष्ट्र में कालिदास का स्मृति-पर्व मनाया गया, और भारतीय दूतावास के सहयोग से शाकुंतल नाटक का सफल अभिनय भी किया गया।

चीनी लेखक-संघ के प्रमुख का अभिमत

He said that China was publishing new editions of *Shakuntala*, and *The Cloud Messenger* translated directly from the Sanskrit this year as well as other works of the poet. "We love Kalidas because although his age is far removed from ours, the powerful humanity of his works, his praise of courage, truthfulness and the fearless pursuit of an ideal, all make us feel he is very close to us and belongs to our own generation."

Mao Tun,
Chairman of the Union of
Chinese Writers' Association.

फ्रेन्च दूतावास का संदेश

AMBASSADE DE FRANCE AUX INDES

19 November 1955

Dear Sir,

He however asks me to thank you for the same and to convey to you the great admiration, he feels, for the immortal poet Kalidas, whose works are among the greatest poetical jewels of the world.

With regards,

Yours faithfully,
Andre-PADOUX
Assistant Cultural Counsellor.

ईरानियन दूतावास का संदेश

Iranian Embassy,
NEW DELHI

Among the nations of world which possess great literary treasures, Iran and India are perhaps the foremost. The two countries share many a glory in this realm, of which exquisite romantic composition is one.

Kalidas whose worshipful commemoration is being celebrated here, was undoubtedly one of the greatest contributors to the literary wealth of India. He is known all the world over for his brilliant dramas and highly poetic rendering. He was, indeed, a great poet whose immortal works will always be read with the utmost interest. To a Persian reader, Kalidas's works are reminiscent of the equally great Persian poet—Nizmi of Ganja (12th century). Like Kalidas in India, the latter collected and immortalized the bulk of Persian romances.

. . .

I hope, functions like this will continue to be held to commemorate the great sages who have added to our wisdom. What I should particularly like to emphasize is that the celebration should not be treated as a mere formal occasion.

Let every one seize the opportunity also to pledge to live up to the ideals held by the person whose life and works they commemorate. I trust the conveners of these celebrations will give the others the much desired lead.

Yours faithfully,
A. A. Hekmat,
Ambassador for Iran.

पाकिस्तान दूतावास का संदेश

NEW DELHI,
24 November 1955

PRESIDENT,
Kalidas Parishad, Ujjain.

Following message from His Excellency Mr. Ghazinfar Ali Khan, reads as, 'I regret that owing to a previous engagement, I am unable to attend your celebrations. But I hasten to join you in paying my homage to the greatest poet and dramatist that India has produced. In fact, Kalidas does not merely belong to India. The place of this Master of Indian epic style is secure in the pantheon of world literature. His name will endure as long as human beings retain taste for great literature. Kalidas is a consummon Artist in conception and sublime in execution. He is the master of sound and language and the supreme poet of sensuous emotion.

Shakuntala has delightened millions in India and Pakistan. Its emotional and æsthetic richness leaves an abiding impression on our minds. Shakuntala is not merely the masterpiece in Sanskrit literature but has also become part of the treasure-house of mankinds' best literature. I wish you all success.'

Secretary,
Pakistan High Commissiner.

महामहिम राष्ट्रपति का संदेश

१० नवम्बर '५६

भारतीय इतिहास में कालिदास की देन और कृतियों को देखते हुए उस महाकवि के स्मरणार्थ जो कुछ भी किया जाय थोड़ा है। वास्तव में हमारी साहित्यिक परम्परा और काव्य-सौष्ठव का परिचय समस्त साहित्य-जगत् में जितना इस महाकवि के नाटकों द्वारा हुआ है, उतना शायद किसी भी एक लेखक की कृतियों द्वारा नहीं हो सका है। अनेकों यूरोपीय विद्वानों ने अभिज्ञान शाकुन्तल तथा कालिदास की अन्य कृतियों को मौलिक रूप में पढ़ने के लिये संस्कृत का अध्ययन किया। आज भी जबकि कल्पना-साहित्य बहुत उन्नत होकर अनेक नवीन धाराओं में प्रस्फुटित हो रहा है, कालिदास की रचनाओं का आकर्षण ठीक पहले जैसा ही बना है।

कालिदास परिषद् के प्रयास का विशेष रूप से इसलिये स्वागत करता हूं क्योंकि कभी-कभी यह सुनने में आता है कि इस महाकवि को जो मान्यता जर्मनी, फ्रांस और यूरोप के दूसरे देशों से मिलती है वह आधुनिक भारत में भी उसे प्राप्त नहीं हो सकी। परिषद् के सत्प्रयास से हमारे देश में महाकवि कालिदास के उत्तम साहित्य को यथोचित गौरव प्राप्त होगा और जनसाधारण उस साहित्य से परिचित हो कालिदास पर गर्व करना सीखेगा, ऐसी मेरी आशा है।

राजेन्द्रप्रसाद

राष्ट्रनायक ढेबर भाई का संदेश

जन्तर मन्तर रोड,
२७ अक्तूबर, दिल्ली

प्रिय भाई,

अखिलभारतीय कालिदास परिषद् हमारे राष्ट्रपति की प्रेरणा से महाकवि कालिदास की स्थायी स्मृति-निर्माण का कार्य कर रही है, यह जानकर प्रसन्नता हुई। महाकवि कालिदास एक दृष्टि से संस्कृत के महाकवि थे, और दूसरी दृष्टि से इस प्रकार के साहित्य के भक्त थे जो दुनियाँ में कम देखने में आता है। साहित्य को छोड़कर उनके दिल में दूसरी लालसा नहीं थी, उनकी साधना द्वारा भारतवर्ष को जो मिला है वह यद्यपि संस्कृत में है, और संस्कृत पढ़नेवालों की संख्या कम है, फिर भी जहाँ-जहाँ साहित्य के उपासक हैं उन सबको आकर्षित करता ही है। उन्होंने जो विरासत में हमको खजाना दिया है वह स्थिर और कायम खजाना है, वह भारतवर्ष और मानव-जाति के लिये निधि है।

उ० न० ढेबर
राष्ट्रनायक अ० भा० कांग्रेस

केन्द्रीय बृहद्-उद्योग मंत्री का संदेश

बाम्बे

२३-११-५६

भाई श्री व्यासजी,

महाकवि कालिदास की स्मृति के लिये एक समिति निर्माण की गई है, यह जानकर खुशी हुई। कवि कालिदास ने हमें उत्कृष्ट साहित्य दिया है, हमें उनकी स्मृति का निर्माण अच्छी तरह से करना चाहिये। मुझे आशा है भारत के साहित्य-प्रेमी धनिक इस अहं-कार्य में अपना सहयोग देंगे।

मुरारजी देसाई

बृहद्-उद्योग मंत्री, भारत सरकार

गवर्नर उत्तरप्रदेश का संदेश

लखनऊ

२३-११-५६

कालिदास के स्मारक के लिए मेरी हार्दिक सहानुभूति है ही।

क० मा० मुन्शी

गवर्नर, उत्तरप्रदेश

अध्यक्ष, पब्लिक सर्विस कमीशन, मध्यप्रदेश का संदेश

८-११-५६

महाकवि कालिदास का उज्जयिनी में स्मारक बनाने के लिये आपने जो सतत परिश्रम किये हैं उसके लिये भारतवासी विशेषतः संस्कृतज्ञ जन आपके बहुत कृतज्ञ होंगे। ऐसे उत्तम कार्य में सहयोग देना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूं।

मा० रेगे

अध्यक्ष, पब्लिक सर्विस कमीशन

गवर्नर, मध्यप्रदेश का संदेश

वास्तव में उज्जयिनी वह प्राचीन नगरी है जहाँ महाकाल और नवग्रह के मन्दिर में पुरातन संस्कृति सुरक्षित है। यह समुचित ही हुआ है कि उसे विक्रम विश्वविद्यालय का केन्द्र बनाया गया है।

उज्जयिनी के लिये इसमें अधिक गौरव की क्या बात हो सकती है कि कालिदास यहाँ रहे और उनकी प्रतिभा का विकास यहाँ हुआ है। यह एक राष्ट्रीय और नागरिक कर्त्तव्य है कि उस महाकवि की यहाँ भव्य और पावन स्मृति स्थापित की जावे, इस विषय में आपके प्रयास शीघ्र सफल हों यह शुभ कामना करता हूं।

डॉ० पट्टाभि सितारामैया
गवर्नर, मध्यप्रदेश

श्री राहुल सांकृत्यायन का संदेश

भूतकाल में भी इस भू-भाग का स्थान बहुत ऊँचा रहा है। यहाँ यदि अनेक वीर होते रहे हैं तो कवियों के गुरु कालिदास के उत्पन्न करने का गौरव इसी भूमि को जरूर है।

किसी भी प्रदेश को गौरव देने के लिए एक कालिदास ही पर्याप्त है।

राहुल सांकृत्यायन

केन्द्रीय वित्तमंत्री का संदेश

My thoughts will be with you on that day. Ujjain has by all accounts been one of the ancient cities with which Kalidas had intimate contacts; yet, I hope that, though immediately Ujjain may be the only place (or perhaps one of the few places) where Kalidas Day is celebrated every year, before long Ujjain will be only the focal point of similar celebrations all over the country.

Kalidas belongs to the whole country and is the part of fabric of our national culture. There are few in this country that have no acquaintance with his works, either in original or through translation or through hearsay; and by a suitable commemoration of this great national figure we honour not merely him but also our common heritage.

The Samiti has done yeoman service to our culture in initiating such celebrations. And I wish it all success.

C. D. Deshmukh
12-11-55

मध्यभारत के राजप्रमुख का संदेश

जयविलास, ग्वालियर
९ नवम्बर १९५५

वस्तुत: महाकवि कालिदास हमारे देश के उन महापुरुषों में से थे जिन्होंने संस्कृति, साहित्य, और कला को भाषा द्वारा अमर वरदान देकर अनुप्राणित किया। उनके महाकाव्य, हमारी संस्कृति के प्रतीक हैं। रघुवंश, मेघदूत, और अभिज्ञान शाकुन्तल के गायक कालिदास वह भारतीय आत्मा हैं, जिन्होंने भावना एवं कल्पना को मुखरित किया, जनता के बौद्धिक स्तर को ऊपर उठाया और कला का एक ऐसा श्रेष्ठ रूप हमारे सामने रक्खा जिससे हमें कल भी प्रेरणा मिली है, आज भी हम प्रेरणा ग्रहण कर रहे हैं और भविष्य में भी उनके साहित्य से भावी सन्तति स्फूर्ति प्राप्त करती रहेगी।

ऐसे युग-पुरुष का स्मरण तथा उनकी अमरवाणी का प्रचार संस्थाओं एवं व्यक्तियों द्वारा किया जाता रहे, इसे मैं राष्ट्र के हित में अत्यन्त आवश्यक मानता हूं। मेरा अपना मत है कि इस विचार और भावना से हमारे देश में सुसंस्कृत, कल्पनाशील एवं बौद्धिक समाज का निर्माण होगा।

जीवाजीराव शिन्दे

बम्बई के राज्यपाल का संदेश

Raj Bhavan
BOMBAY 6
10th November 1955

No material monument is necessary to perpetuate the memory of Kalidas. In fact, Kalidas is the monument, in memory of India's culture and literature. Kalidas has earned eternal glory for himself.

May India prove worthy of Kalidas and share that glory now and in future.

H. Mehtab
Governor of Bombay

पंजाब के राज्यपाल का संदेश

Governor's Camp
PUNJAB, Chandi Mandir
9th November 1955

The name of Kalidas has a unique lusture in the pages of Indian literature. Those whoever thought that India has no literature worth the name, have only to read Kalidas to realise what heights our forefathers attained in this realm. He can, without doubt, rank among the greatest poets of all times.

I hope, with the advent of Independence, we shall devote greater attention to our own literature and the poets, like Kalidas, will be read with devotion and ardour which they deserve.

I join the members of the Samiti in paying my homage to the memory of this greatest poet, produced by India.

Chandresvar Prasad
Governor, Punjab.

पंजाब के मुख्यमंत्री का संदेश

चंडीगढ़
२३ नवम्बर १९५५

उर्दू कवि ज़ौक ने क्या ही सुन्दर शब्द कहे हैं:—

"ज़िन्दा सखुन से नाम क़यामत तलक है ज़ौक
औलाद से तो है यही दो पुश्त चार पुश्त।"

आज किसे ज्ञात है कि अमर कवि कालिदास के वंश का कोई नामलेवा इस भूतल पर विद्यमान है अथवा नहीं। परन्तु जब तक गंगा तथा जमुना की धाराएँ बह रही हैं और जब तक सूर्य, चन्द्रमा तथा तारागण अपने असीम प्रकाश से इस धरा को आलोकित कर रहे हैं, तब तक इस विश्वविख्यात महाकवि की शकुन्तला, मेघदूत, रघुवंश, ऋतुसंहार जैसी अमर कृतियों को करोड़ों व्यक्ति तथा भावी सन्तानें पढ़ती रहेंगी तथा संसार के उच्चतम साहित्य का रसास्वादन करती रहेंगी। यदि संसार के विशाल ब्रिटिश साम्राज्य को अपने अमर कवि शेक्सपियर पर अभिमान है, तो भारतवर्ष भी अपने वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे विश्व-कवियों की कृतियों को याद रखेगा। निःसन्देह कालिदास भारत की अमूल्यतम सम्पत्ति है।

भीमसेन सच्चर

पेप्सू के मुख्यमंत्री का संदेश

PATIALA
19th November, 1955

I am glad that the Shri Kalidas Samiti of Ujjain is organising a festival of Drama to commemorate the world's greatest playwright of all ages. Let us hope this festival will light in some hearts a spark of genius that may revive old glories and give us new cause for pride in indigenous talent. Kalidas is one of the most inspiring figures in India's past. The masterpieces of this Indian scholar and playwright gave our motherland her first taste of international prestige and recognition.

I wish the festival all success.

Brish Bhan
Chief Minister, Pepsu.

बिहार के राज्यपाल का संदेश

राजभवन, पटना
१५-११-५५

महाकवि कालिदास ने मेघदूत, अभिज्ञान शाकुन्तल, कुमारसंभव आदि महाकाव्यों की रचना कर संस्कृत साहित्य को अमर तथा इस देश को गौरवान्वित किया है। मै इस पुनीत अवसर पर अपनी श्रद्धांजलि इस महाकवि को अर्पित करता हूं और आशा करता हूं कि आपका यह प्रयास देश और साहित्य में नव-जीवन का संचार करे।

मेरी शुभ कामनाएँ आपके साथ हैं।

रंगनाथ दिवाकर
राज्यपाल, बिहार

अखिलभारतीय कालिदास परिषद्, उज्जैन

पदाधिकारी और सम्मान्य सदस्यवर्ग

१९५६–५७

अध्यक्ष

श्रीमान् मा० हरिभाऊजी उपाध्याय,
भूतपूर्व मुख्यमन्त्री, अजमेर।

कार्यकारी अध्यक्ष

श्रीमान् मा० सूर्यनारायण व्यास

सम्मान्य सदस्यवर्ग

श्रीमान् मा० गोविन्दवल्लभ पन्त
गृहमन्त्री, केन्द्रीय शासन, नई दिल्ली।

श्रीमान् मा० हरेकृष्ण महताब,
भूतपूर्व गवर्नर, बाम्बे, मुख्यमन्त्री, उड़ीसा।

श्रीमान् मा० क० मा० मुन्शी,
गवर्नर, उत्तरप्रदेश।

श्रीमती हंसा मेहता,
वाइस चांसलर, बड़ौदा विश्वविद्यालय।

श्रीमान् मा० महामहोपाध्याय दत्तो वामन पोद्दार,
पूना।

श्रीमान् डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, एम. ए., डी. लिट.,
हि. वि. वि., बनारस।

श्रीमान् डॉ० शंकरदयाल शर्मा, एम. ए., डी. लिट., एलएल. एम.,
शिक्षामन्त्री, मध्यप्रदेश।

श्रीमान डॉ० माताप्रसाद, डी. एमसी.,
वाइस चांसलर, विक्रम वि. वि., उज्जैन ।

श्रीमान् मा० महामहोपाध्याय प्रो० मिराशी, एम. ए.,
नागपुर ।

श्रीमान् मा० द० व्ही० रेगे, एम. ए., बेरिस्टर, आइ. सी. एस.,
अध्यक्ष, पब्लिक सर्विस कमीशन, मध्यप्रदेश ।

श्रीमान डॉ. भगवतशरण उपाध्याय, एम. ए.,
डायरेक्टर, इन्स्टीट्यूट ऑफ एशियन स्टडी, हैदराबाद ।

श्रीमान डॉ० बूलचन्द, एम. ए., पीएच. डी.,
विशेषाधिकारी, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन ।

श्रीमान् मा० श्रीनारायणजी चतुर्वेदी, एम. ए. (केम्ब्रिज),
संपादक, सरस्वती ।

श्रीमान डॉ. शिवमंगलसिंह 'सुमन', एम. ए., डी. लिट.,
सांस्कृतिक विभाग, भारतीय दूतावास, नेपाल ।

श्रीमान मा० पृथ्वीराज कपूर,
एम. पी., बाम्बे ।

श्रीमान मा० गोपीकृष्ण विजयवर्गीय,
एम. पी., भूतपूर्व मुख्यमन्त्री, मध्यभारत ।

श्रीमान मा० रा० ब० सेठ लालचन्दजी सेठी,
विनोद मिल्स, उज्जैन ।

श्रीमान् मा० पं० गोपीकृष्ण शास्त्री, व्याकरणाचार्य, काव्यतीर्थ

श्रीमान मा० कन्हैयालालजी खादीवाला,
प्रदेशाध्यक्ष कांग्रेस ।

श्रीमान मा० प्रो० वेंकटाचलम, एम. ए.,
माधव कालेज, उज्जैन ।

श्रीमती कमलारत्नम्, एम. ए., टी. डी,
भारतीय दूतावास, मास्को (रूस)।

श्रीमान् मा० वि० किबे, एम. ए.,
इन्दौर।

श्रीमान् मा० के० ना० डांगे, एम. ए.

प्रधान मन्त्री

श्री कृष्णशास्त्री कानिटकर, एम. ए., व्याकरणाचार्य

सहायक मन्त्री

श्री अभिमन्यु शर्मा
श्री कमलाशंकर त्रिवेदी

प्रचार-मन्त्री

श्री बसन्तीलाल बम

संस्था कार्यालय

भारती भवन, उज्जैन

शुद्धि-पत्र

अशुद्ध :—	शुद्ध—	पृष्ठ
पुष्पेजातस्तु	पुष्येजातम्तु	३३
मजु श्री मूलकस्व	मंजु श्री मूलकल्प	४४
इदवाकुवंश	ईक्ष्वाकुवंश	४६
पत्नि सुदक्षिजे	पत्नि सुदक्षिणे	४७
पटना का महत्व प्रतिपादित करता हैं ।	पटना का महत्व प्रतिपादित करता,	४७

निम्न लिखित श्लोक का शुद्ध पाठ इस प्रकार है । ४९

कालिन्दी । ब्रूहि, कुम्भोद्भव जलधि इहकथं नाम गृहणासि कस्मात् ।
छन्तो मे नर्मदाहं त्वमयिवदसि मे नाम कस्मात्समत्याः ।
मालिन्यं तर्हि कस्मादनुभवसि मिलत्कज्जलैर्मालिनीनां
नेत्राम्भोभिः किमासां समजनि कुपितः कुन्तलः क्षोणि पालः ।

फुटनोट—

महामहो० चिन्न स्वामी शास्त्री		पृष्ठ ५१
मेघदूत —स्निध भिन्नाजनाभे	स्निग्ध भिन्नाञ्जनाभे	
वा० रामायण—मिवेदितम्	मिवोदितम् ।	
वा० रामायण—विश्रम्म पुनः प्रयान्त	विश्रम्य पुनः प्रयान्ति ।	पृष्ठ ५२
रामा०—निपीयमाना इव वट पदौदै—	निपीय माना इव षट् पदौघैं ।	पृष्ठ ५३
फुटनोट—डॉ० आत्रेय	डॉ० आत्रेय,	पृष्ठ ५४
दूसरा पैरा चौथी पंक्ति— इस स्त्र अजस्र वाहित	रस स्त्रोत अजस्र प्रवाहित	पृष्ठ ५६
पक्ति १३— न.भिदेश—	नाभिदेश,	
पंक्ति २४— सहित्य जग—	साहित्य-जग	पृष्ठ ५९
पंक्ति ६ पैरा २— ब्राह्मण के प्रति अवध्य	ब्राह्मण के प्रति अवध्य	
पंक्ति १२— पालानु भावेः	पालानु भावैः	
पंक्ति १३— बालोपि नाम मन्तकः	बालोदपि नाव मन्तव्यः	पृष्ठ ६६

५—

कत्तव्य	कर्त्तव्य	पृष्ठ ६८

पंक्ति ६—

पराग	पुराण	पृष्ठ ६८

पंक्ति १—

स्ववीर्यं ग्रुह्योहि	स्ववीर्यं गुप्ताहि	पृष्ठ ६९

पंक्ति १२—

स्नेयंमदीया	सेयंमदीया	

पंक्ति १४—

ईक्ष्वाकूणा मियंभूमि	ईक्ष्वाकूणा मियं भूमि	पृष्ठ ७०

पैरा २ पंक्ति ३—

वगान	वर्णन	पृष्ठ ७१

पैरा ३ पंक्ति २—

बसते भूमि रूध्वंक	बसते भूमि रूध्वंका	

फुटनोट—

विषम-मेग०	विषमें-मेघ०	
रेवाबु	रेवातु	पृष्ठ ७२

पैरा २ पंक्ति २—

ई० स० पूर्व दूसरीसति	ई० स० पूर्व दूसरी शति	पृष्ठ ८६
तालक्षीर सिता मृता मल गडो	तालक्षीर सिताम्मृता मल गुडो	पृष्ठ ८७
कल्पवक्ष प्रसूतम	कल्पवृक्ष प्रसूतम	पृष्ठ ८८

चित्र-परिचय में—

कमला रत्नम	(प्रथम चित्र की प्रथम पंक्ति)
मेघदूत का सम्मिलित गायन कर रही है।	(अंतिम पंक्ति)

सातवां चित्र— चीन देश में शकुन्तला का अभिनय हो रहा है।

नवां चित्र— चीन में शकुन्तला के अभिनय के समय का एक दृश्य।